Date :

Chapter-1

: प्रथम अध्याय :

: विषय-प्रवेश :

:: विषय - प्रवेश ::

प्रास्ताविक :

जहां तक हिन्दी साहित्य का संबंध है उपन्यास एक नयी विधा है, बल्कि समूचे भारतीय साहित्य के लिए भी यह एक नयी विधा है। उपन्यास कथा-साहित्य का प्रकार है और हमारे यहां प्राचीन काल से कथा-साहित्य उपलब्ध होता है; परन्तु अपने वस्तु, शिल्प एवं प्रकृति तीनों दृष्टियों में यह एक सर्वथा नया साहित्य प्रकार है। अंग्रेजी में उसे "नावेल" कहा गया है और "नावेल" का अर्थ ही नया होता है। अभिप्राय यह कि पश्चिम में जहां उसका जन्म हुआ, वहां भी यह साहित्य प्रकार अधिक पुराना नहीं है। पश्चिम में उत्क्रान्ति के बाद सामाजिक ढांचे में जो आमूलचूल परिवर्तन हुआ उसकी अभिव्यक्ति के लिए वहां के साहित्यकारों को एक नये साहित्य-रूप की आवश्यकता का अनुभव हुआ। उसकी पूर्ति हेतु वहां यह नया साहित्य प्रकार अस्तित्व में आया। "नया" होने के कारण ही उसे "नावेल" संज्ञा से अभिहित किया गया। भारतीय

साहित्य में उसका आविर्भाव उन्नीसवीं शताब्दि के उत्तरार्द्ध से माना जाता है, जिसे हिन्दी में नव-जागरण काल के नाम से अभिहित किया गया है। अन्य अनेक विषयों की भाँति उपन्यास-लेखन का प्रारंभ भी बंगाल से ही हुआ। श्री टेकचन्द ठाकुर कृत प्रथम बंगला उपन्यास "आलालेर घरेर दुलाल" सन् 1857 में प्रकाशित होता है। उसके कुछ समय पश्चात् उसी वर्ष मराठी उपन्यास "यमुना-पर्यटन" प्राप्त होता है, जिसके लेखक बाबा पदमनजी थे। सन् 1866 के आसपास गुजराती उपन्यास "करणघेलो" मिलता है। यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है। उसके लेखक नंदशंकर तुळजाशंकर मेहता थे। हिन्दी का प्रथम उपन्यास "भाग्यवती" सन् 1878 में प्रकाशित होता है जिसके लेखक पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी एक आर्यसमाजी पंडित थे और स्त्री-शिक्षा के उद्देश्य को केन्द्र में रखते हुए उन्होंने यह उपन्यास लिखा था। उसकी भूमिका में वह लिखते हैं —" बहुत दिनों से इच्छा थी कि कोई ऐसी पोथी हिन्दी भाषा में लिखूं कि जिसके पढ़ने से भारतखण्ड की स्त्रियों को गृहस्थ धर्म की शिक्षा प्राप्त हो क्योंकि यद्यपि कई स्त्रियां कुछ पढ़ी-लिखी तो होती हैं परन्तु सदा अपने ही घर में बैठे रहने के कारण उनको देश-विदेश की बोलचाल और अन्य लोगों से वरत व्यवहार की पूरी बुद्धि नहीं होती। ... और कई विद्या से हीन होने के कारण सारी आयु चक्की चरखा घुमाने में समाप्त कर लेती हैं। इस कारण मैंने यह ग्रंथ सुगम हिन्दी भाषा में लिखके नाम उसका भाग्यवती रखा। इस ग्रंथ में मैंने एक कल्पित कहानी ऐसी सरस रीति से लिखी है कि जिसके पढ़ने से पढ़नेहारे का मन समाप्ति पर पहुँचाए बिना तृप्त न होवे। और जो-जो व्यवहार ऊपर गिने उन सबमें शिक्षा प्राप्त होती रहे।" [1] उपर्युक्त कथन से भारतेन्दुयुगीन हिन्दी गद्य का पता चलता है। प्रस्तुत भूमिका के नीचे जो संवत दिया है वह 1934 है, इससे इसका सन् 1877 या 1878 में प्रकाशित होना निश्चित है। कुछ विद्वान आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास के आधार पर लाला श्रीनिवास द्वारा

लिखित "परीक्षागुरु" उपन्यास को हिन्दी का प्रथम उपन्यास मानते हैं। हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास कौन-सा है — इस मुद्दे को लेकर साहित्य के इतिहासकारों में मतभेद है। "देवरानी-जेठानी की कहानी", "भाग्यवती" तथा "परीक्षागुरु" को अलग-अलग आलोचक अपने-अपने तर्कों के आधार पर पहला उपन्यास मानते हैं। किन्तु यदि प्रकाशन तिथि को केन्द्र में रखा जाए तो "भाग्यवती" असंदिग्धतया हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास ठहरता है क्योंकि "परीक्षागुरु" सन् 1882 में प्रकाशित हुआ था। प्रस्तुत शोध-प्रबंध शैलेश मटियानीजी के उपन्यासों की भाषा से सम्बद्ध है, अतः उपन्यास से संलग्नित कतिपय मुद्दों को इस प्रथम अध्याय में उठानेका उपक्रम है। उपन्यास का विकास, उपन्यास के उद्भव और विकास के मुख्य कारक, उपन्यास की भाषा - गद्य, गद्य का विकास, उपन्यास में भाषा का महत्व आदि कुछ ऐसे मुद्दे हैं।

उपन्यास- एक आधुनिक साहित्य-प्रकार :

यद्यपि उपन्यास कथा-साहित्य का प्रकार है, तथापि उसका रूपबन्ध सर्वथा अलग है जो उसे एक आधुनिक साहित्य प्रकार की कोटि में समुपस्थित करता है। प्राचीन कथा-साहित्य से यह कई मायनों में अलग है। उपन्यास एक यथार्थधर्मी विधा है और उसमें मानव-चरित्र को व्याख्यायित किया जाता है, जबकि प्राचीन कथा-साहित्य बोध-प्रधान, मनोरंजन-प्रधान था। उपन्यास वास्तविक घटनाओं और पात्रों पर आधारित होता है, जबकि प्राचीन कथा-साहित्य घटना-सूत्रों (Story - motif) पर आधारित ~~होते~~ होता था। उपन्यास एक आधुनिक विधा है, वह विज्ञान तर्क और संगति पर आधारित है; जबकि प्राचीन कथा-साहित्य में चमत्कारिक और दैवी घटनाओं की भरमार मिलती है। यहाँ तक कि यदि पौराणिक वस्तु को लेकर किसी पौराणिक पौराणिक उपन्यास की रचना की जाए तो भी चमत्कारिक घटनाओं को तर्क-संगत ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। उदाहरणतया डा. नरेन्द्र कोहली द्वारा प्रणीत "दीक्षा" उपन्यास में अहल्या के

शिला में परिवर्तित हो जाने की मिथक-कथा को तर्क-संगत और वैज्ञानिक चिंतन के साथ प्रस्तुत किया गया है । आघात और अन्याय से अहल्या जड़ीभूत हो जाती है, बाद में जब राम और लक्ष्मण की संवेदना उसे प्राप्त होती है तब उसकी चेतना पुनः लौट आती है । [2]यह तो मात्र एक घटना है । ऐसी अनेकों घटनाओं को उन्होंने आधुनिक ढंग से प्रस्तुत किया है । उपन्यास का एक प्रमुख तत्व है -- देशकाल और वातावरण । देशकाल और वातावरण ही उपन्यास को वास्तविक बनाते हैं क्योंकि यथार्थ भी देशकाल-सापेक्ष होता है । एक समय और एक देश का यथार्थ दूसरे समय और दूसरे काल से भिन्न होता है । यहां तक कि भाषा में भी एक अंतर आ जाता है । पौराणिक काल की नारी यदि पति को "आर्यपुत्र" विशेषण से संबोधित करती है तो वहां वह अस्वाभाविक नहीं लगेगा, परंतु आधुनिक परिवेश में वह अस्वाभाविक और अवास्तविक प्रतीत होगा । वह हास्यरस का अवलंब होगा । जैसे सुरेन्द्र वर्मा कृत उपन्यास "मुझे चांद चाहिए" की नायिका वर्षा वसिष्ठ कई बार नायक को हंसी-मजाक में "आर्यपुत्र" कहती है । अभिप्राय यह कि उपन्यास में "देशकाल" का सविशेष महत्व होता है । आंचलिक उपन्यास का xxx तो वह प्राण-तत्व होता है जबकि प्राचीन कथा-साहित्य में वह एक सिरे से गायब रहता था । "एकस्मिन काले" से कई बार काम चलाया जाता था । कई बार राजाओं तक के नाम नहीं होते थे । "एक था राजा" से काम चलाया जाता था और यदि होते थे तो भी बड़े "कामन" -से होते थे, जैसे - राजा विक्रम, भोज या उदयन । तो दूसरी तरफ कई बार पशु-पक्षियों तक के नाम होते थे, जैसे हीरामन तोता, चित्रग्रीव नामक कबूतर आदि आदि । अभिप्राय यह कि "उपन्यास-" सर्वथा एक नया साहित्य-प्रकार है ।

यूरोप में उपन्यास का उद्भव :

अधिकांश विद्वान इस तथ्य को स्वीकृत कर रहे हैं कि उपन्यास का उद्भव यूरोप में हुआ और वहां से वह एशियाई देशों में संक्रमित हुआ ।

डा. भारतभूषण अग्रवाल ने अपने शोध-प्रबंध "हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव " मेंxxx में इसे भलीभांति उल्लिखित किया है । चौदहवीं - पन्द्रहवीं शताब्दी के यूरोपीय पनर्जागरण के पश्चात् वहां उपन्यास का उद्भव हुआ । इटली के लेखक बोकाचियो के डेकामेरोन" में सर्वप्रथम उपन्यास का कुछ आभास मिलता है । राल्फ फोक्स इस संदर्भ में लिखते हैं — "Bocaccio first showed the most important feature of the novelist a curiosity about men and women: The novel and the people: Rahph Fox. 83" इसीका अगला चरण फ्रान्सीसी लेखक राबले का "गार्गान्तुआ एण्ड पान्तागुरुल " है जो एक व्यंग्य-विनोदपूर्ण रचना है । उसके पश्चात् स्पेनीश लेखक सर्वान्तीस का "डोन किहोटे " आता है जिसे विश्व-साहित्य की एक महान रचना माना जाता है । अस्तप्राय मध्ययुगीन विश्व की तमाम विद्रूपताओं और विसंगतियों को सर्वान्तीस ने बड़े व्यंग्य और विनोद के साथ चित्रित किया है । उक्त रचनाओं को उपन्यास के करीब की रचनाएं कह सकते हैं, किन्तु उपन्यास का निर्भ्रान्त स्वरूप हमें इंगलैण्ड के लेखक डेनियल डिफो के " राबिन्सन क्रूसो " में मिलता है । वस्तुतः जिसे हम आधुनिक उपन्यास कहते हैं उसकी पहली सम्यक् झलक हमें डिफो, रिचर्डसन, फील्डिंग , स्मालेट और स्टर्न जैसे अंग्रेज लेखकों में मिलती हैं जो अठारहवीं शताब्दी के लेखक हैं । मध्यकाल में व्यक्ति परिवार, जाति, धर्म, परंपरा आदि के बंधनों में जकड़ा हुआ था । किन्तु पुनर्जागरण के पश्चात् की पूंजीवादी व्यवस्था ने मनुष्य को समाज से ही नहीं अन्य व्यक्तियों से पृथक कर दिया । समुद्री तूफानों के थपेड़ों में निर्जन xxxमें द्वीप में अकेले जूझता हुआ क्रूसो उसी पृथक मनुष्य का प्रतीक है । इन प्रारंभिक उपन्यासों में रिचर्डसन की औपन्यासिक कृति "पामेला" और फील्डिंग की "टोम जोन्स " को उल्लेखनीय कहा जा सकता है । उपर्युक्त लेखकों में डिफो, फील्डिंग और स्मालेट जहां बाह्य यथार्थ को चित्रित करते हैं, वहां रिचर्डसन और स्टर्न व्यक्ति के आंतरिक भाव-जगत को सामने लाते हैं ।

अठारहवीं शxxx शताब्दी के अंतिम वर्षों में अंग्रेजी साहित्य को दो महान उपन्यासकार उपलब्ध होते हैं — जेन आस्टिन

और वाल्टर स्काट । ये दोनों उपन्यासकार नितान्त भिन्न और प्रतिकूल दिशाओं के यात्री हैं , लेकिन एक बात में दोनों समान हैं । दोनों ने अपने समय के मध्यवर्गीय कटु यथार्थ को अनदेखा किया है । जेन आस्टिन ने संपन्न , सम्भ्रान्त , अभिजात वर्ग को चित्रित करके तो स्काट ने अपने देश के इतिहास को प्रस्तुत करके । उन्नीसवीं शताब्दी पाश्चात्य उपन्यास के लिए एक गौरवशाली अध्याय है । डिकिन्स , थैकरे , टामस हार्डी , बाल्जाक , स्तान्दाल , फ्लाबेयर , गोगोल , तुर्गनेव , टाल्सटाय , दोस्ताएवस्की जैसे सिद्धहस्त औपन्यासिक विश्व को प्राप्त होते हैं । बीसवीं शताब्दी में गाल्र्सवर्दी , डी.एच. लारेन्स , वर्जीनिया वुल्फ , मार्सेल प्रूस्त , आल्डुस हक्सले , चेखव , गोर्की , जेम्स जायस जैसे विश्वविख्यात उपन्यासकार हमारे सामने आते हैं जो उपन्यास विधा को एक ऊंचाई प्रदान करते हैं । [4]

उपन्यास के उद्‌भव और विकास के कारक :

ऊपर निर्दिष्ट किया गया है कि "नावेल" या उपन्यास पाश्चात्य साहित्य में भी अपेक्षाकृत नयी विधा है । उपन्यास का निर्भ्रान्त स्वरूप अठारहवीं शताब्दी में प्राप्त होता है । भारतीय भाषाओं में उपन्यास उन्नसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से प्राप्त होता है, जिसे ऊपर लक्षित किया गया है । हमारे यहाँ नवजागरण के पश्चात् उपन्यास विधा सामने आती है । इस समय-विशेष में उपन्यास के उद्‌भव और विकास के कई महत्वपूर्ण कारक हैं , जिन पर बहुत संक्षेप में विचार करने का हमारा उपक्रम है । ये महत्वपूर्ण कारक है —/1/ अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव , /2/ गद्य का विकास , /3/ शिक्षा का प्रचार-प्रसार , /4/ मध्यवर्ग का उदय तथा /5/ नवजागरण आंदोलन ।

सन् 1801 में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना के साथ भारत में विश्वविद्यालयीन शिक्षा का प्रारंभ हुआ , जिसके कारण अनेक भारतीय साहित्यकार अंग्रेजी साहित्य से परिचित हुए । अंग्रेजी साहित्य के पठन-पाठन से "नावेल" जैसी साहित्य-विधा की ओर वे आकर्षित हुए और उन्होंने अपनी-अपनी भाषाओं में उपन्यास साहित्य की रचना

ही है जिसका कुछ-कुछ निर्भ्रान्त रूप रामप्रसाद निरंजनी कृत "भाषा-योग-वासिष्ठ में मिलता है। इस संदर्भ में डा. रामधारीसिंह दिनकर लिखते हैं -- " हिन्दी गद्य का, निश्चित रूप से, सुस्पष्ट प्रमाण, हमें रामप्रसाद निरंजनी के "भाषा-योगवासिष्ठ " नामक ग्रन्थ में मिलता है जिसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी गद्य का आदि-ग्रन्थ कहा है। राम-प्रसाद निरंजनी पटियाले के थे और सन् 1941 में उन्होंने यह ग्रन्थ बनाया था। .... निरंजनीजी की भाषा और आज की प्रचलित हिन्दी में बहुत अधिक अंतर नहीं है।" [9] भाषा योगवासिष्ठ " के गद्य का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है --

" हे रामजी ! जो पुरुष अभिमानी नहीं है वह शरीर के इष्ट-अनिष्ट में राग-द्वेष नहीं करता क्योंकि उसकी शुद्ध वासना है। मलीन वासना जन्मों का कारण है। ऐसी वासना को छोड़कर जब तुम स्थित हो तब तुम कर्ता हुए भी निर्लेप रहोगे। और हर्ष, शोक आदि विकारों से जब तुम अलग रहोगे तब वीतराग, भय, क्रोध से रहित रहोगे। जिसने आत्म-तत्त्व पाया है, वह जैसे स्थित हो वैसे ही तुम भी स्थित हो। इसी दृष्टि को पाकर आत्म-तत्त्व को देखो। तब विगतज्वर होगे और आत्मपद को पाकर फिर जन्म-मरण के बंधन में न आओगे।" [10]

किन्तु हिन्दी गद्य का अजस्र प्रवाह तो उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना के साथ हुआ। 4 मई, सन् 1800 में कलकत्ता में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना हुई जिसके हिन्दुस्तानी विभाग के अध्यक्ष ज्होन गिल क्राइस्ट थे। उनकी अध्यक्षता में हिन्दी गद्य की पाठ्यपुस्तकों को तैयार करने के लिए कुछ अध्यापकों की नियुक्तियाँ हुईं जिनमें लल्लूलाल गुजराती और पंडित सदल मिश्र आते हैं। लल्लूलालजी ने भागवत के दशम स्कन्ध के आधार पर "प्रेमसागर" नामक गद्य रचना सन् 1805 में लिखी तो पंडित सदल मिश्र ने उसी वर्ष "नासिकेतोपाख्यान" नामक गद्य-ग्रन्थ की रचना की। लल्लूलालजी के गद्य पर ब्रजभाषा का प्रभाव लक्षित होता है और उसमें उर्दू का भी कुछ पुट मिलता है। पं. सदल मिश्र की गद्य-भाषा कुछ

गद्य की अनिवार्यता के संदर्भ में है । राल्फ फोक्स ने इसमें और एक बात जोड़ते हुए कहा कि उपन्यास मात्र प्रकथनात्मक गद्य नहीं, अपितु मानव-जीवन का गद्य है । यथा — " It is a Prose of man's life " 8 अभिप्राय यह कि आधुनिक काल में गद्य के विकास ने उपन्यास के द्वार खोल दिये । शिक्षा का प्रचार-प्रसार और मध्यवर्ग का उदय ये दो भी अन्य सशक्त कारण हैं । पूंजीवाद के उदय के साथ मध्यवर्ग का उदय हुआ । अब शिक्षा केवल उच्च-वर्ग का अधिकार नहीं रह गया । शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण एक ऐसे मध्यवर्ग का उदय हुआ जो अपने परिवेश और समय में गहरी रूचि रखता था और जिसकी मानसिक भूख निरंतर बढ़ती जा रही थी ।

उन्नीसवीं शताब्दी के मानसिक गठन में नवजागरण की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता । ब्रह्मोसमाज, प्रार्थनासमाज, आर्यसमाज, थियोसोफिकल सोसायटी, स्वाधीनता-संग्राम जैसे सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक आंदोलनों ने लेखकों को अनेक नये विषय दिये । नारी-विमर्श, दलित विमर्श तथा उससे जुड़े मुद्दे जैसे स्त्री-शिक्षा का प्रचार, नारियों के अधिकार, दहेज-प्रथा का विरोध, वृद्ध-विवाह का विरोध, शिशु-विवाह का विरोध, ऊंच-नीच का विरोध, अस्पृश्यता का विरोध, दलितों के मंदिर-प्रवेश का मुद्दा, भारत की स्वाधीनता का सवाल, हिन्दू-मुस्लिम एकता का सवाल जैसे अनेक मुद्दे लेखकों को प्राप्त हुए । हिन्दी का प्रथम उपन्यास "भाग्यवती" स्त्री-शिक्षा के महत्व को रेखांकित करने वाला उपन्यास है । प्रेमचन्द युग का समस्यामूलक उपन्यास तो पूर्णतया उपर्युक्त मुद्दों को अभिव्यक्ति देते हैं ।

हिन्दी गद्य का विकास :

जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है गद्य के आविर्भाव तथा उपन्यास के आविर्भाव में कार्य-कारण संबंध छिपा हुआ है । अतः यहाँ बहुत संक्षेप में गद्य के विकास को निरूपित करने का हमारा उपक्रम है । वस्तुतः हिन्दी उपन्यास का जिस गद्य से संबंध है वह तो खड़ी बोली गद्य

की । यह एक सुविदित तथ्य है कि गुजराती के प्रथम उपन्यासकार नंदशंकर तुळजाशंकर मेहता को औपन्यासिक लेखन में प्रवृत्त करने वाले एक अंग्रेज शैक्षिक अधिकारी थे । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल "परीक्षागुरु" को हिन्दी का प्रथम उपन्यास इसलिए घोषित करते हैं कि वह अंग्रेजी ढंग का पहला मौलिक उपन्यास है । [5]

इस समय-विशेष में उपन्यास के उद्भव का कारण गद्य का आविर्भाव है । आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी की गद्य रचनाएं उंगली पर गिनने के लायक हैं । आदिकाल में राउलवेल , उक्ति-व्यक्ति प्रकरण तथा वर्ण-रत्नाकर ; मध्यकाल में चौरासी वैष्णवन की वार्ता , दो सौ वैष्णवन की वार्ता , भाषा-योगवासिष्ठ जैसी कुछ इनी-गिनी गद्य रचनाएं उपलब्ध होती हैं । किन्तु गद्य का अजस्र प्रवाह तो आधुनिक काल में ही प्रवाहित होता है । इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आधुनिक काल को गद्यकाल कहा है ।

इस तरह हम देख सकते हैं कि गद्य के विकास के साथ ही उपन्यास का आविर्भाव जुड़ा हुआ है । सशक्त और जीवंत गद्य के अभाव में उपन्यास का उद्भव असंभव है । यूरोप में सशक्त गद्य के विकास के उपरांत ही उपन्यास आया है । डा. भारतभूषण अग्रवाल इस संदर्भ में लिखते हैं — " एडीसन , स्टील आदि निबन्धकारों के फलस्वरूप , और पत्रकारिता के पर्याप्त विकास के फलस्वरूप ऐसे गद्य का विकास हो चुका था जो वर्णन , विवेचन और चित्रण में समर्थ था । उन्हीं की रचनाओं में यथार्थवाद पहली बार अपनी बलिष्ठता और उन्मुक्तता में चरितार्थ हुआ है । " [6]

उपन्यास के लगभग तमाम आलोचकों ने एकमत से इस तथ्य को रेखांकित किया है कि उपन्यास गद्य की विधा है । इसलिए तो उपन्यास आधुनिक काल में मिलता है । न्यू इंगलिश डिक्शनरी में कहा गया है — Novel is a fictional prose of considerable length " [7] अर्थात् एक विशिष्ट आकार का प्रकथनात्मक गद्य है । इसके अलावा भी उसमें कई बातें कही गई है । पर जो बात सबसे पहले कही गई है वह

पूरबीपन लिए हुए संस्कृत-तत्सम शब्दावली युक्त है । लगभग इसी समय दो अन्य लेखक स्वतंत्र रूप से हिन्दी गद्य-लेखन में प्रवृत्त थे — मुंशी सदासुखलाल और इंशा अल्लाखां जिन्होंने क्रमशः "सुखसागर" और "रानी केतकी की कहानी " की रचना की ।मुंशी सदासुखलाल के गद्य में संस्कृतनिष्ठता और पंडताऊपन मिलता है तो ईंशा अल्लाखाँ के xxxx के गद्य पर उर्दू भाषा का प्रभाव लक्षित होता है । इन चार लेखकों ने हिन्दी गद्य का प्रवर्तन किया किन्तु हिन्दी गद्य की अखण्ड धारा तो सन् 1857 के बाद से ही शुरू होती है । हिन्दी गद्य के विकास में ईसाई x मिशनरी , राजा xx राममोहनराय ; उदण्ड मार्तण्ड , बंगदूत , प्रजामित्र , बनारस-मार्तण्ड , सुधाकर , बुद्धिप्रकाश जैसी पत्रिकाएं ; राजा शिवप्रसाद सितारेहिxxxxx xxxxहिन्द , राजा लक्ष्मणसिंह , दयानंद सरस्वती , पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी , नवीनचन्द्र राय , xxxx भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा इनके मंडल के लेखक प्रभृति का बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है । पंडित श्रीधर पाठक ने खड़ीबोली आंदोलन चलाकर उसे और पुष्ट किया । पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी गद्य को व्याकरण-सम्मत करके उसे परिनिष्ठित एवं परिमार्जित किया । उसके बाद तो हिन्दी गद्य का विकास दिन दूना रात चौगुना होता ही गया क्योंकि उपन्यास , कहाणी , नाटक , xxxx निबंध , समालोचना , लेख जैसी गद्य-विधाओं में अनेक लेखक आये और उसके कारण हिन्दी गद्य अत्यन्त सशक्त होता गया । [11]

हिन्दी उपन्यास का विकास :

ऊपर निर्दिष्ट किया गया xx है कि उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से भारतीय भाषाओं में उपन्यास मिलने लगता है । हिन्दी का प्रथम उपन्यास "भाग्यवती" सन् 1878 में प्राप्त होता है । किन्तु हिन्दी उपन्यास को गौरव तो प्रेमचन्द द्वारा प्राप्त होता है । अतः औपन्यासिक विकास की जहाँ बात आती है , हिन्दी के इतिहासकारों ने प्रेमचन्द को केन्द्रस्थ रखते हुए , उसके नाना सोपानों में प्रेमचन्द के नाम का उल्लेख किया है । यथा — पूर्व प्रेमचन्दकाल , प्रेमचन्दकाल , प्रेमचन्दोत्तरकाल आदि ।

चूँकि प्रबंध का संबंध शैलेश मटियानी के उपन्यासों से है, अतः यहाँ बहुत संक्षेप में उसके उपर्युक्त विकास पर एक विहंगम दृष्टिपात किया जा रहा है —

(क) पूर्व-प्रेमचन्दकाल :

हिन्दी उपन्यास का उद्‌भव सन् 1878 में हुआ और हिन्दी में प्रेमचन्द का आविर्भाव सन् 1918 में हुआ । अतः सन् 1878 से सन् 1918 तक के कालखण्ड को उपन्यास के क्षेत्र में पूर्व-प्रेमचन्दकाल कहते हैं । इस कालखण्ड में हमें दो प्रकार के लेखक मिलते हैं — नवसुधारवादी और पुरातनवादी या सनातनपंथी । नवसुधारवादी लेखक नवजागरण से समुद्‌भूत समाजसुधार के मुद्दों को लेकर आगे बढ़ते हैं जिनमें पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी , लाला श्रीनिवासदास , पं. बालकृष्ण भट्ट , अयोध्यासिंह उपाध्याय , मन्नन द्विवेदी आदि परिगणित हो सकते है । पुरातनपंथी या सनातनी लेखक "ओल्ड इज़ गोल्ड " के पक्षपाती थे और नवीन जीवन-मूल्यों को नकारते थे । ऐसे लेखकों में किशोरीलाल गोस्वामी , मेहतालज्जाराम शर्मा , राधा-कृष्णदास , देवकीनंदन खत्री आदि आते हैं । औपन्यासिक प्रवृत्तियों की दृष्टि से विचार करें तो प्रस्तुत कालखण्ड में हमें पाँच प्रकार की औपन्यासिक प्रवृत्तियाँ उपलब्ध होती हैं — सामाजिक उपन्यास , ऐतिहासिक उपन्यास, जासूसी उपन्यास , तिलस्मी उपन्यास और अनूदित उपन्यास । सामाजिक उपन्यासों में "भाग्यवती" , " परीक्षागुरु " , सौ अजान एक सुजान " , "निस्सहाय हिन्दू " , " स्वतंत्र रमा परतंत्र लक्ष्मी " आदि आते हैं जिनके लेखक क्रमशः पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी , लाला श्रीनिवासदास , पं. बालकृष्ण भट्ट , राधाकृष्णदास , मेहता लज्जाराम शर्मा आदि हैं । इनके उपन्यास औपन्यासिक कला की दृष्टि से अपरिपक्व , स्थूल-कथावस्तुप्रधान , उपदेशप्रधान , यथार्थ चरित्र-चित्रणरहित और फार्मूलाबद्ध हैं । ऐतिहासिक उपन्यासों में "रजिया बेगम " , "राजसिंह " , "विरजा " आदि उपन्यास मिलते है जिनके लेखक क्रमशः किशोरीलाल गोस्वामी , प्रतापनारायण मिश्र और राधाचरण गोस्वामी हैं ।[12]

यद्यपि किशोरीलाल गोस्वामी आदि द्वारा ऐतिहासिक उपन्यासों का ~~xxxxx~~ सूत्रपात इस युग में हो गया था, किन्तु गोस्वामीजी के उपन्यासों को डा. भारतभूषण अग्रवाल ने ऐतिहासिक रम्याख्यान (Historical Romances) कहा है।[13] " इस कालखण्ड में दो उपन्यासकार ऐसे हुए हैं, जिनसे हिन्दी उपन्यास को लाभ व हानि दोनों हुए हैं। लाभ इस अर्थ में कि हिन्दी उपन्यास को उन्होंने अत्यन्त लोकप्रिय और लोकभोग्य बनाया; हानि इस अर्थ में कि हिन्दी उपन्यास जो अपनी स्वाभाविक दिशा में बढ़ रहा था, उसमें इन लेखकों ने गतिरोध पैदा कर दिया तथा उसे वायवी, काल्पनिक तथा केवल मनोरंजनप्रधान बना दिया। ये लेखक हैं बाबू देवकीनंदन खत्री तथा बाबू गोपालराम गहमरी। चन्द्रकान्ता और चन्द्रकान्ता संतति खत्रीजी के प्रसिद्ध तिलस्मी उपन्यास हैं। ये चौबीस भागों में लिखे गए हैं।"[14] यह एक अद्भुत उपन्यास है, इतना तो मानना ही पड़ेगा क्योंकि हजारों घटनाएं और पात्रों के रहते हुए भी खत्रीजी कहीं चुके नहीं हैं। गहमरीजी पूर्णरूपेण जासूसी-लेखन को समर्पित थे। उन्होंने "जासूस" नामक एक पत्रिका भी निकाली थी जिसमें वे जासूसी कहानियां और जासूसी उपन्यास धारावाहिक रूप से प्रकाशित करते थे। उन्होंने दो सौ से करीब जासूसी उपन्यास लिखे हैं और किसी जमाने में उनको हिन्दी का "कानन डायल" समझा जाता था। इस कालखंड में सबसे ज्यादा उपन्यास अनूदित प्रकार के हैं। बंगला, अंग्रेजी, पंजाबी, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं से अनेक उपन्यासों का अनुवाद हिन्दी में हुआ। यहां एक बात ध्यातव्य है कि तिलस्मी और जासूसी उपन्यास अभी भी लिखे जा रहे हैं, परन्तु प्रेमचन्द तथा प्रेमचन्दोत्तर औपन्यासिक विकास में उनका उल्लेख नहीं किया गया है, क्योंकि उनकी गणना स्तरीय साहित्यिक उपन्यासों में कभी भी नहीं हुई है। हिन्दी के प्रारंभिक काल में उनका उल्लेख इसीलिए हुआ है कि वह औपन्यासिक विकास का पहला दौर था और इन उपन्यासों ने इस विधा को लोकप्रिय बनाने में में बड़ा योग दिया था। अनूदित उपन्यास स्तरीय और साहित्यिक तो होते हैं, परन्तु परवर्ती कालों में उनका उल्लेख भी

नहीं हुआ है क्योंकि ये उपन्यास उन-उन भाषाओं की धरोहर समझे जाते हैं जिनमें उनका प्रणयन हुआ है । प्रथम काल में इसलिए उन्हें उल्लेखनीय समझा गया है , क्योंकि हिन्दी उपन्यास को एक दिशा चिह्नित करने का श्रेय इन उपन्यासों को जाता है ।

{ख} प्रेमचन्दकाल :

सन् 1918 से 1936 तक का समय हिन्दी साहित्य में कथा-साहित्य के परिप्रेक्ष्य में "प्रेमचन्दयुग " कहा जाता है । कविता के क्षेत्र में इसी कालखण्ड को "छायावाद" के नाम से अभिहित किया गया है । वस्तुतः वास्तविक उपन्यास की शुरूआत प्रेमचन्द से ही होती है । हिन्दी उपन्यास को उसका सही गौरव मुंशी प्रेमचन्द ने ही दिलाया । प्रेमचन्द से पूर्व अन्य भाषाओं से उपन्यासों का अनुवाद हिन्दी में तो होता था , किन्तु हिन्दी उपन्यासों का अनुवाद अन्य भाषाओं में नहीं होता था , कदाचित इसलिए कि उन्हें स्तरीय नहीं समझा जाता था । यह मुंशी प्रेमचन्द का जादू है कि हिन्दी उपन्यासों का अनुवाद अन्य भाषाओं में भी होने लगा । प्रेमचन्द हिन्दी साहित्य के प्रथम विश्व-स्तर के साहित्यकार हैं । उनकी तुलना महान रूसी लेखक गोर्की से होती रही है । हिन्दी में एक ग्रन्थ का प्रकाशन भी हुआ था , जिसका नाम "प्रेमचन्द और गोर्की " था ।[15] मानव-चरित्र की पहचान तथा मानवीय-संस्पर्श और दृष्टिकोण प्रेमचन्दजी की अपनी विशेषताएं हैं । डा० रामविलास शर्मा के शब्दों में कहें तो प्रेमचन्द की महत्ता इसमें है कि उन्होंने लाखों "चन्द्रकान्ता " तथा "तिलस्मे-होशरूबा " के पाठकों को "सेवासदन" का पाठक बनाया ।[16] प्रेमचन्द की समाजविधायिनी दृष्टि विशाल एवं व्यापक थी । एक सीमा तक इस कथन में सत्य है कि जो कार्य गांधीजी ने कांग्रेस में किया , वही कार्य प्रेमचन्दजी ने हिन्दी साहित्य में किया । गांधीजी ने कांग्रेस को बहुआयामी बनाया , प्रेमचन्द ने हिन्दी कथा-साहित्य को । "हंस" और "जागरण" जैसी पत्रिकाओं के माध्यम से उन्होंने एक युग का निर्माण किया । इसलिए प्रेमचन्दजी को "युगनिर्माता" साहित्यकार कहा जाता है । हिन्दी के

केवल दो ही साहित्यकारों को आधुनिक काल में यह गौरव हासिल हुआ है — भारतेन्दु और आचार्य श्रीमहावीरप्रसाद द्विवेदी । किन्तु यह स्मरण रहे कि भारतेन्दु अतुलित संपत्ति के स्वामी थे और द्विवेदीजी के साथ हिन्दी की एक सम्मानित संस्था जुड़ी हुई थी । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में कहें तो यदि आप उत्तर-भारत के गांवों को जानना चाहते हैं तो प्रेमचन्द से अच्छा परिचायक आपको कोई दूसरा नहीं मिलेगा । प्रेमचन्द तथा प्रेमचन्दयुग के उपन्यासों में तत्कालीन जीवन की सभी सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक समस्याओं को रेखांकित किया गया है । प्रेमचन्द के उपन्यासों में वरदान, सेवासदन, निर्मला, गबन, रंगभूमि, कर्मभूमि, प्रेमाश्रम, कायाकल्प तथा गोदान आदि मुख्य हैं । गोदान कृषक जीवन का महाकाव्य है । डा. इन्द्रनाथ मदान इसे हिन्दी उपन्यास का प्रथम मोड़ मानते हैं । इस काल के अन्य उपन्यासकारों में विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक", पांडेय बेचन शर्मा उग्र, ऋषभचरण जैन, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, तेजोरानी दीक्षित, उषादेवी मित्रा, शिवरानी देवी, वृन्दावन लाल वर्मा, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा आदि हैं । इनमें अंतिम तीन लेखकों का कृतित्व इस काल में उनके लेखन के प्रथम चरण में था । उनके कृतित्व का यथार्थ विकास तो प्रेमचन्दोत्तर काल में ही हुआ ।

(ग) प्रेमचन्दोत्तरकाल :

सन् 1936 के बाद के औपन्यासिक विकास को "प्रेमचन्दोत्तर काल" कहा जाता है । प्रेमचन्दकाल की औपन्यासिक प्रवृत्तियों में सामाजिक और ऐतिहासिक ये दो प्रवृत्तियां मुख्य हैं किन्तु प्रेमचन्दोत्तर काल में उपन्यास का बहुमुखी विकास होता है जिसमें निम्नलिखित

औपन्यासिक प्रवृत्तियां मिलती हैं —

/1/ सामाजिक उपन्यास , /2/ ऐतिहासिक उपन्यास , /3/ मनोवैज्ञानिक उपन्यास , /4/ समाजवादी उपन्यास , /5/ आंचलिक उपन्यास , /6/ राजनीतिक उपन्यास , /7/ पौराणिक उपन्यास , /8/ साठोत्तरी उपन्यास तथा /9/ व्यंग्य उपन्यास ।

वैसे तो सभी उपन्यास सामाजिक ही होते हैं , किन्तु उन उपन्यासों को सविशेष रूप से सामाजिक कहा जाता है जिनमें समाज के प्रश्नों तथा सरोकारों को विशेष तवज्जो मिलती है । "गिरती दीवारें " { अश्क } , " लोहे के पंख " {हिमांशु श्रीवास्तव } , "बूंद और समुद्र " , "अमृत और विष " { अमृतलाल नागर } , "भूले बिसरे चित्र " , "टेढ़े मेढ़े रास्ते " { भगवतीचरण वर्मा } प्रभृति उपन्यासों की गणना इसके अंतर्गत हो सकती है ।

ऐतिहासिक उपन्यासों में उपन्यास का कथानक किसी ऐतिहासिक वृतान्त पर आधारित होता है । जिस प्रकार वास्तविक सामाजिक उपन्यासों का सूत्रपात प्रेमचन्द द्वारा हुआ , ठीक उसी प्रकार वास्तविक ऐतिहासिक उपन्यासों का सूत्रपात वृन्दावनलाल वर्मा से हुआ । प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासों में "विराटा की पद्मिनी " , झांसी की रानी लक्ष्मीबाई " , मृगनयनी { वृन्दावनलाल वर्मा } ; जय सोमनाथ , सोना और खून , वैशाली की नगरवधू { आचार्य चतुरसेन शास्त्री } ; दिव्या , अमिता {यशपाल } ; मुर्दों का टीला { डा. रांगेय राघव } ; सिंह सेनापति , जय यौधेय { महापंडित राहुल सांकृत्यायन } ; बाणभट्ट की आत्मकथा , चारुचन्द्रलेख , पुनर्नवा , { आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी } ; मानस का हंस , खंजन-नयन { अमृतलाल नागर } ; मगध की जय {शिवसागर मिश्र } ; पहला सूरज , पीतांबरा , देख कबिरा रोया , काके लागूं पांव , गोविन्दगाथा { डा. भगवतीशरण मिश्र } प्रभृति उल्लेखनीय हैं । इनमें जो मार्क्सवादी-समाजवादी लेखक हैं उन्होंने अपने ऐतिहासिक उपन्यास मार्क्सवादी दृष्टिकोण को केन्द्र में रखते हुए लिखे हैं । ऐसे लेखकों में यशपाल , राहुलजी , रांगेय राघव आदि आते हैं ।

जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का सूत्रपात तो प्रेमचन्दयुग में ही हो गया था, किन्तु उसका अत्यधिक विकास प्रेमचन्दोत्तरकाल में हुआ। मनोवैज्ञानिक उपन्यास भी होते तो सामाजिक ही है, किन्तु उनमें लेखक का दृष्टिकोण वैयक्तिक अधिक होता है। उनमें लेखक का ध्यान मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पर अधिक रहता है और वे मनोवैज्ञानिक समस्याओं, ग्रन्थियों तथा मनोवैज्ञानिक क्षणों पर आधृत होते हैं। ऐसे मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में परख, त्यागपत्र, सुनीता, कल्याणी, जयवर्द्धन, मुक्तिबोध (जैनेन्द्रकुमार); जहाज का पंछी, प्रेत और छाया, पर्दे की रानी, संन्यासी (इलाचन्द्र जोशी); शेखर एक जीवनी- भाग 1 और 2, नदी के द्वीप, अपने अपने अजनबी (अज्ञेय); अजय की डायरी, भीतर का घाव (डा. देवराज); तंतुजाल (डा. रघुवंश); मछली मरी हुई (राजकमल चौधरी); सूरजमुखी अँधेरे के (कृष्णा सोबती); आपका बण्टी (मन्नू भंडारी), उसका बचपन (कृष्ण बलदेव वैद), रेखा (भगवतीचरण वर्मा), वे दिन (निर्मल वर्मा); अठारह सूरज के पौधे, बैसाखियोंवाली इमारत (रमेश बक्षी); पचपन खम्भे लाल दीवारें, रुकोगी नहीं राधिका ? (उषा प्रियंवदा) आदि को उल्लेख्य कहा जा सकता है।

समाजवादी उपन्यासकार मार्क्सवादी दृष्टि से सामाजिक सरोकारों को देखते हैं। दादा कामरेड, पार्टी कामरेड, झूठा सच, मेरी तेरी उसकी बात (यशपाल); बलचनमा, उग्रतारा, इमरतिया (नागार्जुन); मुर्दों का टीला, कब तक पुकारूँ (डा. रांगेय राघव); सत्ती मैया का चौरा, गंगा मैया (भैरवप्रसाद गुप्त); शहीद और शोहदे (मन्मथनाथ गुप्त) प्रभृति उपन्यासों को हम इस कोटि में रख सकते हैं।

वैसे तो अंचल या स्थान प्रत्येक उपन्यास में होता है, क्योंकि "देश और काल" उपन्यास का एक प्रमुख अभिलक्षण है। "देशकाल" के चित्रण के बिना उपन्यास में वास्तविकता आ ही नहीं सकती है।

वस्तुतः देखा जाए तो "आंचलिक " उपन्यास में अंचल को उसकी समग्रता के साथ प्रस्तुत किया जाता है । "अंचल" ही उस उपन्यास का वास्तविक नायक [redacted] होता है । अंचल की तमाम जन-सांस्कृतिक विशेषताएं उसमें उदघाटित होती हैं । मैला आंचल , परती परिकथा ﴾ रेणु ﴿ ; जंगल के फूल ﴾ राजेन्द्र अवस्थी ﴿ ; सागर लहरें और मनुष्य ﴾ उदयशंकर भट्ट ﴿ ; अलग अलग वैतरणी ﴾ डा. शिवप्रसाद सिंह ﴿ ; होलदार , चौथी मुट्ठी ﴾शैलेश मटियानी ﴿ इत्यादि उपन्यासों को हम आंचलिक उपन्यासों की कोटि में रख सकते हैं ।

निकट अतीत की राजनीतिक गतिविधियों पर आधारित उपन्यासों को राजनीतिक उपन्यास की संज्ञा दी जाती है । टेढ़े टेढ़े मेढ़े रास्ते , प्रश्न और मरीचिका , सबहिं नचावत राम गोसाईं ﴾ भगवतीचरण वर्मा ﴿ ; झूठा सच , मेरी तेरी उसकी बात ﴾ यशपाल ﴿ ; सीधा-सादा रास्ता , विषादमठ ﴾ डा. रांगेय राघव ﴿ ; एक पंखुड़ी की तेज धार ﴾ शमशेरसिंह नरूला ﴿ ; महाभोज ﴾ मन्नू भंडारी ﴿ ; चन्द औरतों का शहर , आकाश कितना अनंत है ﴾ शैलेश मटियानी ﴿ आदि उपन्यासों को हम इस कोटि में रख सकते हैं ।

पौराणिक कथावस्तु पर आधारित उपन्यास को पौराणिक उपन्यास कहते हैं । पौराणिक उपन्यास और ऐतिहासिक उपन्यास में उतना ही अंतर है जितना पुराण और इतिहास में है । यह एक सुविदित तथ्य है कि हमारा इतिहास दो-ढाई हजार वर्षों से पीछे नहीं जाता है । उसके पहले का जो काल है उसे हम पुराणकाल कहते हैं । सतयुग , त्रेता , द्वापर आदि की कल्पना वहां की गई है । मोटे तौर पर रामायण , महाभारत , भागवत , वेद , उपनिषद पर आधारित उपन्यासों को पौराणिक उपन्यास की संज्ञा दी जाएगी । रामायण और महाभारत की कथावस्तु पर आधारित डा. नरेन्द्र कोहली के उपन्यास , अनामदास का पोथा ﴾ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ﴿ , प्रथम पुरुष , पवनपुत्र ﴾ डा. भगवतीशरण मिश्र ﴿ आदि उपन्यासों को

हम पौराणिक उपन्यास कह सकते हैं ।

साठोत्तरी उपन्यासों में सन् साठ के बाद के उपन्यास आते हैं । अतः यह एक काल-विषयक विभावना है । ऊपर विविध कोटियों में जो उपन्यास दिए हैं, उनमें कई साठ के बाद के हैं । अतः उनको साठोत्तरी कहा जा सकता है । किन्तु यहाँ एक बात गौर-तलब है, और वह यह कि साठ के बाद का कोई भी उपन्यास साठोत्तरी नहीं कहा जाएगा । केवल उन्हीं उपन्यासों को साठोत्तरी की संज्ञा मिलेगी जिनमें हमें साठ के बाद की चेतना मिलती है । अँधेरे बन्द कमरे (मोहन राकेश) ; डाक बंगला, तीसरा आदमी (कमलेश्वर) ; अनदेखे अनजान पुल (राजेन्द्र यादव) ; मछली मरी हुई (राजकमल चौधरी) ; बैसाखियोंवाली इमारत, अठारह सूरज के पौधे (रमेश बक्षी) ; सूरजमुखी अँधेरे के (कृष्णा सोबती) ; पचपन खम्भे लाल दीवारें, रुकोगी नहीं राधिका ? (उषा प्रियंवदा) ; आधा गांव (डा. राही मासूम रज़ा) ; जल टूटता हुआ, सूखता हुआ तालाब, अपने लोग (डा. रामदरश मिश्र) ; चन्द औरतों का शहर, आकाश कितना अनंत है, छोटे-छोटे पक्षी, जल तरंग, बर्फ गिर चुकने के बाद (शैलेश मटियानी) वगैरह उपन्यासों को हम साठोत्तरी की संज्ञा में रख सकते हैं ।

"व्यंग्य उपन्यास" उनको कहा जायेगा जिसमें आद्यन्त समग्र उपन्यास में व्यंग्य ही व्यंग्य हो । उपन्यास की गणना "Literature of discard" में होती रही है । अतः व्यंग्य उसका एक सशक्त औजार है । प्रारंभ से ही उपन्यास में व्यंग्य मिलता है । बालकृष्ण भट्ट, उग्र, अश्क वगैरह में जगह-जगह मिलता है । जैसे "सेवासदन" उपन्यास का तो प्रारंभ ही एक व्यंग्यात्मक स्थिति से होता है । यथा - "पछतावा तो सभी को होता है, परन्तु लोगों को जहाँ अपने बुरे कामों का पछतावा होता है, दारोगा कृष्णचन्द्र वर्मा को अपनी ईमानदारी को लेकर पछतावा हो रहा था । इस तरह उपन्यास में व्यंग्य तो मिलता ही था । परन्तु "व्यंग्य" उपन्यास इसको कहा जाएगा जो व्यंग्य से आद्यन्त सरोबार

होगा । जिस प्रकार मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक क्षणों की तलाश रहती है, ठीक उसी प्रकार व्यंग्यात्मक उपन्यासों में व्यंग्यात्मक क्षणों की तलाश रहती है । राग दरबारी (श्रीलाल शुक्ल) ; एक चूहे की मौत (बदी उज्जमां) ; कथा-सूर्य की नयी यात्रा (हिमांशु श्रीवास्तव) ; कुरु-कुरु स्वाहा, नेताजी कहिन (मनोहरश्याम जोशी) ; जंगलतंत्रम (श्रवणकुमार गोस्वामी) ; कबूतरखाना (शैलेश मटियानी) आदि उपन्यासों को हम व्यंग्य उपन्यासों की कोटि में रख सकते हैं । हरिशंकर परसाई कृत "रानी नागफनी की कहानी" भी एक व्यंग्य उपन्यास है ।

<u>उपन्यास में भाषा का महत्त्व :</u>

उपन्यास की तमाम परिभाषाओं में एक बात कही गई है कि वह गद्य की भाषा है । xxxxxxxxxxx योरोप में भी इस विधा का विकास गद्य के साथ हुआ है । पूर्ववर्ती पृष्ठों में यह निरूपित हो चुका है कि एडीसन, स्टील आदि निबंधकारों द्वारा जब गद्य विचार-विश्लेषण आदि के परिपुष्ट और सशक्त हो गया उसके बाद ही उपन्यास का आविर्भाव हुआ है ।[18] हमारे यहां भी हम देखते हैं कि उन्नसवीं शताब्दी में गद्य के आविर्भाव के पश्चात् लगभग सन् 1878 में पहला हिन्दी उपन्यास आता है । उसके पश्चात् जैसे-जैसे गद्य का विकास होता गया, उपन्यास भी विकसित होता गया है । पूर्व-प्रेमचन्दकाल का उपन्यास अपरिपक्व है, ऐसा पूर्ववर्ती पृष्ठों में निर्दिष्ट किया गया है । उसका एक कारण यह भी है कि तब तक गद्य का विकास अच्छी तरह नहीं हुआ था । व्याकरण की दृष्टि से गद्य लड़खड़ाता हुआ नज़र आ रहा था । ब्रजभाषा की गिरफ्त से वह मुक्त नहीं हुआ था । उसकी शैली भी कुछ-कुछ पुरानापन लिए हुए मिलती है । उदा-

हरण के तौर पर हम "भाग्यवती" के गद्य को ले सकते हैं । यथा — "काशी नगरी में पंडित उमादत्तजी के घर में एक पुत्र उत्पन्न हुआ कि जिसका नाम "लालमणि" और पुत्री हुई कि जिसका नाम "भाग्यवती" रखा । यह लालमणि चाहे छोटी-सी अवस्था में ही कुछ व्याकरण शास्त्र पढ़ चुका और संस्कृत बोलने की परीक्षा देकर एक पाठशाला में पन्द्रह रूपये मासिक पाता था परन्तु सोलह वर्ष की आयु पर्यन्त इसका विवाह नहीं हुआ था । मम चाहे काशी के भीतर और बाहर से कई पंडितों में ने लालमणि का गुण यौवन और प्रतिष्ठा सुन के अपनी कन्याओं का सम्बन्ध करना चाहा परन्तु उसके पिता की यही इच्छा थी कि मैं लालमणि का विवाह अठारह वर्ष के पीछे करूंगा । ... एक दिन लालमणि की माता ने अपने स्वामी से कहा महाराज लड़का अब सोलह वर्ष का हुआ और अपने हाथों से खाने-कमाने लग गया आप उसके विवाह का यत्न क्यों नहीं करते ? देखो हमारे वंश के और सब बालक कोई नौ वर्ष का और कोई दस वर्ष का ब्याहा गया इनको देख के हमारे लालमणि के मन में अपने क्वारेपन की क्या लज्जा नहीं होगी ?"[19]

उपर्युक्त गद्य की तुलना यदि हम आज के गद्य से करें तो स्पष्ट हो जाएगा कि उस समय का गद्य उतना परिपक्व और परिमार्जित नहीं था । आज हिन्दी गद्य हर प्रकार की चुनौती के लिए सक्षम प्रतीत होता है ।

उपन्यास कीभाषा के संदर्भ में राल्फ फोक्स का मत :

राल्फ फोक्स पाश्चात्य औपन्यासिक आलोचना में एक बहुत बड़ा नाम है । उनके औपन्यासिक आलोचना-ग्रन्थ का नाम है — Novel and the people । उसमें उन्होंने उपन्यास के गद्य के संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण विधान किया है । उपन्यास की प्रारंभिक परिभाषा में जब उसे "Novel is a Fictional Prose" कहा गया तो फाक्स ने उसमें इज़ाफा करते हुए कहा —

अर्थात् वह मात्र प्रकथनात्मक गद्य मत्र नहीं है , बल्कि वह मानव-जीवन का गद्य है । यहाँ "मानव-जीवन का गद्य " कहने के पीछे उनका तात्पर्य क्या है ? "मानव-जीवन के गद्य " से उनका अभिप्राय वह गद्य या वह भाषा है जिसका प्रयोग आमतौर पर लोग करते हैं । फाक्स ने हमेशा "लोक-जीवन" पर अधिक ध्यान दिया है । उनके ग्रन्थ का नाम भी "Novel and the people" है । अर्थात् उपन्यास और लोग । एक शिष्ट , स्तरीय और मानक भाषा तथा लोगों की भाषा में हमेशा एक अंतर रहा है और ध्यान रहे इसी कारण भाषा का विकास हुआ है । गुजरात की मानक भाषा " का रूप तो समग्र गुजरात में एक जैसा रहेगा , परन्तु लोगों द्वारा जो गुजराती बोली जाती है , उसका रूप तो अलग-अलग रहेगा । हमारे यहाँ वाघोडिया तालुका में "वेसणिया" नामक एक गांव है । वहाँ की भाषा का एक नमूना जो मैंने हमारे एक संबंधी के मुंह से सुना था यहाँ प्रस्तुत है —" भया ! चेरियो तो अमे खाधेली. तार भै पुज्यो जीवे. हुंन पुज्यो वाघोरिये जतेला. अनतै मरधर वारी रोर में एक आंबुडी लच्टेड वरी जैली . मैं पुज्याने क्यु . पुज्या ! आंबुडी तो जो ! पुज्याए क्यु — " वरती दक्कल एनो घाट " ."

अब इसीका यदि हम शुद्ध-मानक गुजराती करें तो वह कुछ ऐसा होगा —" भाई ! केरीओ तो एक वार अमे खाधी हती . ते वखते तारा पुजाभाई जीवता हता . हुं अने पुजाभाई वाघोडिआ जता हता . अने त्यां माडोधरवाळा पेला मोटा खेतर में एक आंबुडी (आम का छोटा वृक्ष) केरीओ थी छवाई गयेली. मैं पुजाभाईने कह्युं — " पुजा ! जरा आंबुडी तो जो . पुजाभाईए कह्युं — "वळती वखते (लौटते समय) एनी कईंक युक्ति करीशुं ." इस उदाहरण के द्वारा मैं यह कहना चाहता हूं कि मानक भाषा और लोगों की बोलचाल की भाषा में हमेशा एक अंतर मिलेगा । मानक भाषा में वाक्य कुछ-कुछ विस्तृत और ब्यौरेवार मिलेगा । जबकि बोलचाल की भाषा में संक्षिप्तिकरण की प्रवृत्ति अधिक मिलती है । ऊपर के उदाहरण को ही लें तो "तार भै पुज्यो जीवे " यह बोलचाल का वाक्य है , जो मानक भाषा में हुआ —

" तारा पूजाभाई ते वखते जीवता हता . " — दूसरे लोकभाषा में कुछ लौकिक और देशज शब्दों की भरमार मिलती है । उपर्युक्त उदाहरण में "लच्चेंड" और " दक्कल " ऐसे ही शब्द हैं । यह बोलचाल की लोगों की भाषा एक ही भाषा-क्षेत्र में कुछ-कुछ फासले में भी बदलती रहती है । मानक भाषा में कहा जाएगा — " आ मकान बनी रह्युं छे " , किन्तु कोई दक्षिण गुजराती होगा तो कहेगा — " आ मकान थतुं छे . " कई बार तो एक ही गांव में अलग-अलग जाति-समुदाय के लोगों की भाषा में , बल्कि इसे बोली कहना चाहिए , फरक होता है । इस तथ्य का अनुभव हमें फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास "मैला आंचल " में होता है । उसमें छत्री टोली , तंत्रिमा टोली , ठाकुर टोली , चमरौटी , संथाल टोली , बबुआ टोली आदि की बोलियों में हमें एक विशिष्ट अंतर मिलता है ।

इसे ही राल्फ फाक्स "मानव-जीवन का गद्य " कहता है । उपन्यास में प्रयुक्त भाषा उसके परिवेश की भाषा होनी चाहिए । लेखकीय भाषा या मानक भाषा का प्रयोग केवल लेखकीय वक्तव्यों , विवरणों , विश्लेषणों और टिप्पणियों में पाया जाता है और वहां भी लेखक की औपन्यासिक कला के दर्शन इस तथ्य में निहित रहेंगे कि वह लोकभाषा के कितना निकट है । वहां भाषा का दूसरा रूप या स्तर ~~[illegible]~~ पैबन्द-सा नहीं लगना चाहिए ।

दूसरे एक बात और है । लोकबोली में कहावतों और मुहावरों का प्रयोग भी खूब मिलता है । ग्रामीण और कस्बाई लोग बात -बात में कहावतों और मुहावरों का प्रयोग करते नज़र आते हैं । हिन्दी का पूरबी क्षेत्र हुआ तो बात-बात में कबीर और तुलसी के दोहे तथा तुलसी की चौपाइयां कहते हैं क्योंकि वे उनके जीवन में सांसों की तरह रस-बस गए हैं । एक अवधी कहावत है — " सास धरी लुहार , ननद धरी कुम्हार , न तू कहा हमार , न हम कहि तोहार ।" इस कहावत का

प्रयोग तब होता है जब दोनों पक्ष में कोई खोट होती है। भाषा के दो रूप होते हैं — एक लिखित रूप ~~और दूसरा~~ {Written form language} और दूसरा बोला जानेवाला रूप { Spoken language }। उपन्यासकार का अधिक सरोकार इस दूसरेवाले रूप से रहता है। यह पहले बताया जा चुका है कि उपन्यास में लिखित भाषा या मानक भाषा का प्रयोग केवल वर्णन, विश्लेषण आदि के लिए होता है, उपन्यास का अन्य व्यापार तो पात्रों और उनके संवादों के माध्यम से चलता है और यहां मानक भाषा नहीं किन्तु पात्रों के परिवेश की भाषा, दूसरे शब्दों में कहें तो "

" का प्रयोग होता है। इस संदर्भ में समकालीन औपन्यासिक साहित्य के एक सशक्त हस्ताक्षर डा. गोविन्द मिश्र के निम्नलिखित कथन को ध्यान में लेना होगा — "मैं जो परिवेश उठाता हूं, उसमें अपनी भाषा ले जाने के बजाय वहां की भाषा ढूंढता हूं। तो खुद को मैं खुला रखना चाहता हूं कि भाषा भी जमीन की आये, उसी जमीन से ताल्लुक है रेणु-कबीर का। ... {कवि} का व्यक्तित्व पूरा का पूरा सराबोर हो उस जमीन में तो वहां की गन्ध उसमें आयेगी। कबीर का फक्कड़पन हिन्दुस्तान का फक्कड़पन है। इसलिए कबीर की चीजों में भले ही तुलसीदास की अंतरंगता आपको न मिले, भले ही आपको ज्ञान की बातें आपको न मिले, लेकिन उबड़-खाबड़ ढंग से छोटी-छोटी बातों में, झटके में बहुत-सी बातें कह दी गई हैं। बिना परवाह किए क्या कहा है, क्या हुआ है। यह आम हिन्दुस्तान की चीज है, जहां एक साधारण आदमी भी मामूली ढंग से बड़ी-बड़ी बातें कह जाता है। उसे पता भी नहीं होता। यह जो भारतीय तत्त्व है, वह मुझे दूसरे लेखकों में कम मिलता है। रेणुजी से तो आज तक ईर्ष्या करता हूं कि मैं उस हद तक सराबोर नहीं हो पाया।" 21

अतः एक बात निश्चित है कि उपन्यास में वही लेखक सफल हो सकता है, जिसका इस बोलचाल की भाषा पर —

— खूब प्रभुत्व हो, और यह प्रभुत्व आता है लोगों के रात-दिन के

सम्पर्क से , उनके साथ उठने-बैठने से , खाने-पीने से । मिश्रजी कहते हैं कि उन्हें इस बात का मलाल है कि वे कबीर और रेणु की तरह सरोबार नहीं हो पाए हैं । कारण स्पष्ट है । ये दोनों मस्त-मौजी थे , फक्कड़ थे , लोगों में लोगों की तरह रहने वाले थे , सरकार के कोई सोफिस्टिकेटेड अफसर नहीं । प्रेमचन्द , उग्र , रेणु , नागार्जुन , मटियानी, गुजराती के उपन्यासकार पन्नालाल पटेल , ईश्वर पेटलीकर तथा झवेर-चन्द मेघाणी आदि उपन्यासकारों के नाम इस संदर्भ में उदाहरणीय हो सकते हैं । प्रेमचन्द के उपन्यास , कई बार पात्रों की तार्किक परिणति न होने के बावजूद विश्वसनीय बन पड़े हैं उसका एक मुख्य कारण परिवेश निर्माण में उनकी वस्तुवादी दृष्टि रही है । उनके पात्र अपने परिवेश की भाषा को लेकर अवतरित होते हैं । प्रेमचन्द बिलकुल सही कहते हैं कि मैं अपने पात्रों को पुस्तकों से नहीं लोगों के बीच से उठाता हूं । देखिए "सेवासदन" उपन्यास के दो मुस्लिम पात्रों का कथोपकथन —

" हाजी हासीम बोले — " बिरादराने वतन की यह नयी चाल आप लोगों ने देखी ? वल्लाह इनको सूझती खूब है । बगली घूंसे मारना कोई इनसे सीख लें । मै तो इनकी रेशादवानियों से इतना बदजन हो गया हूं कि अगर इनकी नेकनीयती पर ईमान लाने में नजात भी होती , तो न लाऊं । " अबुल वफा ने फरमाया — " मगर अब खुदा के फजल से हमको भी अपने नफे-नुकसान का एहसास होने लगा है । यह हमारी तादाद को घटाने की सरीह कोशिश है । तवायफें 90 फीसदी मुसलमान हैं , जो रोजे रखती हैं , इजादारी करती हैं , मौलूद और उर्स करती हैं । हमको उनके जाती फेलों से कोई बहस नहीं है । नेक व बद की सज़ा व ज़ज़ा देना खुदा का काम है । हमको तो सिर्फ उनकी तादाद से गरज है । आलिहाजा , मुझे रातको आफताब का यकीन हो सकता है , पर इन हिन्दुओं की नेकनीयती पर यकीन नहीं हो सकता । " [22]

उपर्युक्त उदाहरण में दो मुस्लिम पात्रों का कथोपकथन है और ये मुस्लिम भी सामान्य या आम नहीं हैं , आलिमोफाजिल हैं , उनकी

भाषा उर्दू है । यह भी एक ध्यान देने की बात है कि जिस प्रकार कट्टरतावादी हिन्दू संस्कृतनिष्ठ हिन्दी को प्रधानता देते हैं , ठीक उसी प्रकार कट्टरतावादी मुस्लिम भी उर्दू-प्रधान हिन्दी बोलते हैं या उर्दू बोलते हैं ।

इस संदर्भ में एक और उदाहरण हम शैलेश मह मटियानी के उपन्यास " चिठठीरसैन " से दे रहे हैं ।xx इस उपन्यास में हरगांव के आनसिंग के दो बेटे हैं — नाथू हवालदार और मxxxxx मोहनसींग । नाथू हवालदार फौज में है और चाहते हैं कि उनका छोटा भाई मोहनसींग भी फौज में भर्ती हो जाए । आनसींग नहीं चाहता है कि दूसरा बेटा भी फौज में जाए । मोहनसींग का ब्याह रमौती से हुआ है , पर वह अभी स्यानी नहीं हुई है । नाथू हवालदार अपने पिताजी को समझा रहे हैं —

" बखत से भरती हो जाएगा तो मोहनिया की भी जिन्दगी बन जाएगी । अच्छा दमदार निकल गया तो तरक्की हो जाएगी । फौज में किसीको दरबानसींग नेगी बनते xxxx×xxx×xxxx×है कितना बखत लगता है । रूतबे का रूतबा , पैसों के पैसे और कभी-कभार तराई-भावर x के इलाके में जमीन मिलने के चानस भी रहेंगे । आपसे (आनसींग से) चार हाथ आगे चलूं इतनी अभी औकात नहीं । मगर पीछे होगा यही कि कभी आपके या मोहनिया के दिमाग में मेरी बात बैठी भी , तो कहावत यही होगी कि ' मौसम था तो बीज नहीं बोए , बीज बोने चले तो बखत निकल गया । ' .... इधर मोहनिया रिक्रूटिंग xxxxx×x×xxx हाफिस में गया और उधर भर्ती जमादार ने उमर पूछी , दांत देखे , "ओभरेज " कह दिया । ... अभी तो ब्वारी (बहू) भी सयानी नहीं । साल-दो साल में मोहनिया छुट्टी पर आने लगेगा । ... फौज में अगर बखत से भर्ती हो जाते हो , तो एक बिनीफीट ताजिन्दगी यह मिलना कि टाइम से रिटायर होके पेन्शन लेके घर में बैठो । ये तो हमारी लखनपुर की पट्टी हुई कि लोग फौज में भर्ती×x×xxxx भर्ती होने की जगह , लीसे के कनिस्तर ढोना पसंद करते हैं । उधर पिथौरागढ़ की तरफ जाइये तो कौन घर हुआ , जिसमें दो-चार फौजी नहीं । "[23]

यहां शैलेश मटियानी ने जो परिवेश लिया है वह कुमाऊं प्रदेश का है । वहां के लोग अक्सर फौज में भर्ती होते हैं और एक भाई जाता है तो दूसरे को भी खींच ले जाता है । यहां नाथू हवालदार की भाषा का जो नमूना है उससे उधर के फोजियों की भाषा आ अंदाज मिल जाता है । "मोहनिया" , "बखत" , तराई-भावर " , "स्यानी" , "ब्वारी" आदि शब्दों से कुमाऊं बोली के प्रभाव को लक्षित किया जा सकता है । फोजियों को वहां बीच-बीच में कुछ अंग्रेजी शब्द बोलने की भी आदत होती है । "ओभरेज" [ओवर एज] , "बिनीफीट" , "रिकरूटिंग " आदि शब्द इस तथ्य की ओर इशारा करते हैं । वहां के लोगों को बात-बात में मसल या कहावत कहने का भी शौक होता है । "दरबानसींग नेगी " बनते देर नहीं लगती " कहने के पीछे आशय यह रहा होगा कि उधर का कोई सामान्य हैसियत का व्यक्ति फौज में दाखिल हुआ होगा जो बाद में फौज की नौकरी के कारण ऊंची हैसियत का मालिक बन गया होगा । कहने का अभिप्राय यह है कि उपन्यास में जन-जीवन की भाषा का ~~प्रयोग~~× प्रयोग उसे वास्तविक और जीवंत बनाता है ।

उपन्यास की भाषा के संदर्भ में इरा वालफर्ट का मत :

ऊपर निर्दिष्ट किया गया है कि मानक भाषा का प्रयोग तो उपन्यास में लेखकीय विश्लेषण , ~~विवेचन~~× विवेचन , चिंतन या टिप्पणियों में होता है ; परन्तु पात्रों के कथापकथनों में तो उसी भाषा का प्रयोग होगा जिस भाषा को वे बोलते हैं । बल्कि उसे भाषा न कहकर बोली" ही कहना चाहिए । आंग्ल लेखिका ईरा वाल्फर्ट अपने लेख " व्हाट इज़ नावेल व्होट इज़ इट गुड फार " में लिखती है — " Language of human life being lived 24 अर्थात् उपन्यास में प्रयुक्त भाषा मानव-जीवन की सक्रिय या जीवंत भाषा होती है । दूसरे शब्दों में कहें तो उपन्यास की भाषा में " Standard language " नहीं , बल्कि " Spoken language " का पुट होना चाहिए ।

जगदम्बाप्रसाद दीक्षित का उपन्यास मुंबई कर झोंपड़पट्टी के लोगों के जीवन पर आधारित है, अतः उसकी भाषा भी उसी प्रकार की है। यथा — " किधर भी चोरी करना, पन इस्मगलर, दारूवाला, रण्डीवाला इधर कभी भूल के भी नहीं जाने का, नहीं तो पोलिस जान से मार डालेंगा मार मार के, कभी नहीं छोडेंगा ... सारा पोलिस खाता उधर से च चलता।" [25]

यहां पर झोंपड़पट्टी का जब्बार नामक एक चोर एक स्मगलर के यहां चोरी करता है। तब नत्थू नामक एक कैदी जब्बार से उपर्युक्त बात कहता है। मुंबई की झोंपड़पट्टी की भाषा मराठी-गुजराती शब्दों की भरमार मिलती है। कुछ लोग इसे "टपोरी लैंग्वेज" भी कहते हैं। अब तो कई ~~फिल्मी~~ फिल्मी गीत भी "टपोरी लैंग्वेज" में मिलने लगे हैं। अभी सम्प्रति प्रदर्शित हुई फिल्म " मुन्नाभाई : एम.बी.बी.एस. " में इस प्रकार के गीतों की भरमार है।

शैलेश मटियानी के "हौलदार" उपन्यास को कई औपन्यासिक आलोचकों ने आंचलिक उपन्यास माना है। [26] इस उपन्यास का हरकसिंह लोकदेवता सैमराजा का डंगरिया है। "डंगरिया" शब्द अपने आप में कुमाऊं बोली का है, जिसका अर्थ "ओझा" या "गुनी" होता है। गुजराती में उसे "भूवा" कहते हैं। हरकसिंह में "सैमराजा" आते हैं। सिर उठाकर जब सैमराजा प्रस्थान करते हैं, तब उनका देवदास उदेराम कैलाशप्रस्थानी अवधाप (छंद) गाते हुए कहता है —

" हेर, बेला हुई अबेर, मेरे देवता, महादेवता, पद्मासनी सैमराजा ! .... नरलोक में अवतार लिया, धरती धरमराज को धन्य धन्य कर गया। गोठ की गैया, गोदी के बालक, धरतीमैया को कल्याणमुखी हो गया ... नाचा कूदा .... नर वानरों को मंगलमुखी हो गया ... हे मेरे आसनधारी देवता ! अस्तमुखी कैलाशवासी हो जा ... कि चन्द्रमुखी रात्रि बेला में, अपनी अवतारगाथा के अंतिम अक्षत आखरों में लगती समाधि, मुंदती पलकों में स्थान देकर

सबको दाहिना हो जा मेरे स्वामी ।" [27]

ग्रामीण पृष्ठभूमि वाले लोगों को ज्ञात है कि डंगरिये के साथ देवता-विशेष यaxx× देवी-विशेष के अवधाण (छंद) पढ़नेवाला एक व्यक्ति होता है जिसे कुमाऊं भाषा में "जंगरिया" या देवदास कहते हैं । गुजराती में भी उसे "जागरिया" कहते हैं । ऐसे लोगों की विशिष्ट प्रसंगों में बोलने की एक विशिष्ट शैली होती है, जिसे उपर्युक्त उदाहरण में हम लक्षित कर सकते हैं । इन पंक्तियों का लेखक गांव के एक केशवा महराज को जानता है जो सांप या बिच्छू का मंत्र पढ़ते हुए गाता था —

" ऐ कालीकत्ता वाली, तेरा बचन न जाये खाली, सतलोक का मतलोक में करे, मतलोक का काम सतलोक में करे, तै करिता जो पाछी पड़े तो तारा टूटी हेठा पड़े, आभ फाटे, धरती रुठे, ×xxxxxx xxxxxxxxxxxxxxxxxxxx28 चांदो सूरज फेरा फरे, ओम अलख xx निरंजन ।" [28]

उक्त उदाहरणों से हम कह सकते हैं कि उपन्यास में कथोपकथनों में पात्रों की भाषा को लिया जाता है और जो लेखक लोकजीवन के जितने करीब होगा, वह उसमें उतना ज्यादा सफल रहेगा । इस संदर्भ में डा. राजेन्द्र यादव रेणु के संदर्भ में लिखते हैं —" रेणु का पाठक कहानी पढ़ता नहीं देखता है, सुनता है । एक-एक ध्वनि, एक-एक रंग, एक-एक गंध को महसूस करता हुआ जीता है । वातावरण — परिवेश जो मात्र कथा-साहित्य का तत्व ही माना xxजाता रहा, कदाचित् सर्वप्रथम जीवित पात्र की तरह अपना हक रेणु से मांगता है ।" [29] गुजराती के कवि एवं आलोचक तथा ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता साहित्यकार उमाशंकर जोशी ने रेणु के उपन्यास "मैला आंचल" के संदर्भ में अपनी टिप्पणी देते हुए कहा था कि उसमें लेखक ने कमसेकम डेढ़ सौ भाषागत xxxxxxx " टोन्स " का उपयोग किया है । [30] पूर्ववर्ती पृष्ठों में डा. गोविन्द मिश्र ने भी रेणु की भाषा की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए उन्हें जन-जीवन में "सरोबार" बताया है । किन्तु हिन्दी आलोचक यहां शैलेश मटियानी को शायद विस्मृत कर गए हैं । भाषा पर जैसा और जितना प्रभुत्व रेणु का है, वैसा और उतना ही प्रभुत्व मटियानी

जी का भी है , इस तथ्य को आज नहीं तो कल , हिन्दी आलोचकों को अंगीकृत करना ही होगा ।

औपन्यासिक यथार्थ और भाषा :

अधिकांश औपन्यासिक आलोचकों ने उपन्यास को यथार्थ की विधा माना है । केवल जैनेन्द्रकुमार ने उपन्यास में आदर्श की बात कही है ।[31] न्यू इंग्लिश डिक्शनरी की परिभाषा में कहा गया है — "In which actions and characters are proffessing to represent those of Real life." [32] अर्थात् उसमें वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करनेवाली घटनाओं और पात्रों को प्रस्तुत किया जाता है । राल्फ फाक्स कहते हैं — "The first art to take the man as a Whole" [33] अर्थात् उपन्यास वह पहली कला है जिसमें मनुष्य को उसकी समग्रता के साथ प्रस्तुत किया जाता है । "मनुष्य को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करना " वाक्यांश का अर्थ ही यह होगा कि उसमें यथार्थ का सविशेष आग्रह है । मुंशी प्रेमचन्द कहते हैं — " मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र मात्र समझता हूं , मानव-चरित्र के रहस्यों को खोलना और उन पर प्रकाश डालना ही उपन्यासकार का कार्य है । " [34] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजी तो यहां तक कहते हैं — " उपन्यास में दुनिया जैसी है वैसी ही चित्रित करने का प्रयास रहता है । " [35] आचार्य नंददुलारे वाजपेयी कहते हैं — " उपन्यास आधुनिक युग का महाकाव्य है । इसमें मानव जीवन और मानव-चरित्र का चित्रण उपस्थित किया जाता है । वह मनुष्य के जीवन और चरित्र की व्याख्या करता है । " [36] डा. गणेशन इस संदर्भ में लिखते हैं — " उपन्यास मनुष्य के सामाजिक , वैयक्तिक अथवा दोनों प्रकार के जीवन का रोचक साहित्यिक रूप है , जो प्रायः एक कथा-सूत्र के आधार पर निर्मित होता है । " [37]

~~उपर्युक्त~~ उपर्युक्त सभी परिभाषाओं को एक साथ देख जाने पर उनसे जो एक सर्व-सामान्य तथ्य उभरकर आता है , वह है उपन्यास में यथार्थ का महत्त्व । यहां तक कि आदर्शवादी कथाकार भी अपने आदर्श

की पृष्ठभूमि का निर्माण तो यथार्थ पर ही करते हैं । अतः यथार्थ-धर्मिता को हम उपन्यास का प्राणतत्त्व कह सकते हैं ।

उपन्यास में यह यथार्थ सभी स्तरों पर रहता है — कथावस्तु, चरित्र, कथोपकथन, देशकाल, विचार और उद्देश्य तथा भाषाशैली । भाषा तो उपन्यासकार का औजार है । कथावस्तु के अनुरूप भाषा का प्रयोग करना पड़ता है । कथावस्तु यदि सामाजिक है तो जिस समाज का उसमें चित्रण हुआ है, उसके अनुरूप भाषा को लिया जाएगा । चरित्र-निर्माण में भी भाषा का बड़ा ही योग है । वहाँ भाषा मिट्टी का काम करती है । परवर्ती अध्यायों में उस पर विस्तार से चर्चा होगी । कथोपकथन या संवाद तो पात्रानुरूप होते ही हैं या होने चाहिए, अर्थात् वहाँ भी चरित्र-निर्माण में पात्र की यथार्थ भाषा को ही लिया जाएगा । देशकाल या परिवेश के निर्माण में भी भाषा का योग कम नहीं है । देशकाल के अनुरूप भाषा का प्रयोग करना पड़ता है । उदाहरण-स्वरूप यहाँ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजी के एक उपन्यास— चारुचन्द्रलेख — की भाषा को प्रस्तुत किया जा रहा है —" मूर्ख राजाओं और चाटुकार पंडितों ने "अरि" का अर्थ ही शत्रु हो जाने दिया है, कभी पड़ोसी राजा को "अरि" कहा जाता था, मित्र वह होता था जो पड़ोसी का पड़ोसी हो । किसी समय ऐसा विचार ठीक रहा होगा । परन्तु अभी जो तुरुष्क आये हैं, वे सबके शत्रु हैं । ...." अरि" का "अरि" होकर भी तुरुष्क मित्र नहीं बनेगा । गाँठ बाँध लो इस बात को । मैं कान्यकुब्ज का उच्छेद देख चुका हूं, गौड़ का पराभव देख चुका हूं । चौहानों का मर्दन सुन चुका हूं, चंदेलों की कहानी सुन चुका हूं । मित्रसेना के नाम पर गाहड़वारों का तुरुष्कों को निमंत्रित करना कितनी बड़ी भूल थी । .... और देख सातवाहन शुक्र और कामंदक की रणनीति में परिवर्तन की आवश्यकता है । हिमालय के उस पार से आने वाली सेना उन बंधनों को नहीं मानती । भटिंडा की लड़ाई में राजपुत्रों की मौलसेना सूर्योदय में ही लड़ने को बाध्य हुई ; कल्पपाल सोये हुए थे, कलेवा नहीं

मिला ; अपराह्न तक लड़ते-लड़ते वे क्लान्त हो गए ; लड़ते-लड़ते खा नहीं सकते थे , हजार बाधाएं थीं ; चौका नहीं था ; अस्पृश्य से स्पर्श का बचाव नहीं था ; घोड़ों के मांस से काम नहीं चला सकते थे ; शत्रु की मार से नहीं , पेट की मार से भहरा गए ।" 38 प्रस्तुत कथन में अक्षोभ्य भैरव राजा सातवाहन को संबोधित कर रहे हैं । अतः उपन्यास की भाषा में तत्कालीन शब्दावली का आना स्वाभाविक ही कहा जाएगा । बल्कि यदि ऐसी भाषा न होती तो औपन्यासिक यथार्थ को व्याघात पहुंचता । "अरि" , "तुरुष्क" , कान्यकुब्ज " , "मित्रसेना" , "मौल-सेना " , "कल्यपाल " , अपराह्न " आदि शब्दों ने तत्कालीन ऐतिहासिक परिवेश की सृष्टि की है । पात्रों की भाषा ही नहीं , उनको उनके विचारों की भाषा तथा विचारों में भी यथार्थता का निर्वाह करना होगा । कोई बिलकुल निरक्षर भट्टाचार्य हो और उसके मुंह में यदि मार्क्स-एंजिल या फ्रायड की बात को रखा जाए तो उसे अयथार्थ ही करार दिया जाएगा ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि उपन्यास में यथार्थ के निर्माण के लिए भाषा का एक औजार के रूप में इस्तेमाल होता है । भाषा पर यदि अधिकार न हो तो ऐसा करना लेखक के लिए बड़ा मुश्किल होता है ।

एक ही उपन्यास में भाषा के कई स्तर :

एक ही उपन्यास में भी भाषा के कई स्तर देखे जा सकते हैं । भाषा का एक स्तर तो मानक भाषा का होता है , जो सर्वत्र एक-सा मिलेगा । लेखकीय वक्तव्य , विश्लेषण , वर्णन इत्यादि में भाषा का यह मानक रूप मिलता है । परन्तु भाषा का दूसरा स्तर हमें पात्रों की भाषा में उपलब्ध होता है और यहां पर पात्र जितने भिन्न परिवेश या वातावरण के होंगे , भाषा के भी उतने स्तर मिलेंगे । पूर्ववर्ती पृष्ठों में "मैला आंचल " उपन्यास में भाषा के लगभग 150 "टोन्स " मिलने का उल्लेख हम कर चुके हैं । मेरे निर्देशक महोदय का गांव

बड़ौदा जिले के वाघोड़िया तहसील का गुताल गांव है । एक बार वे बता रहे थे कि उनके गांव में जो लोग रहते हैं उनमें भाषा तो "गुजराती" है , परन्तु प्रत्येक जाति की भाषा में "टोन" और "लहजे" में काफी अंतर मिलता है । "मैला आंचल" में भी यही हुआ है । अतः एक ही उपन्यास में आपको कई भाषा के कई-कई स्तर मिल सकते हैं । पूर्ववर्ती पृष्ठों में "सेवासदन" उपन्यास में दो मुस्लिम पात्रों की भाषा का उदाहरण प्रस्तुत किया है । उसी उपन्यास में विट्ठलदास नामक एक आदर्शवादी चरित्र भी आया है । एक स्थान पर वह भारतीयों की गुलाम मनोदशा पर अपने विचार व्यक्त कर रहे हैं । यथा —

" आपकी अंग्रेजी शिक्षा ने आपको ऐसा पददलित किया है कि जब तक यूरोप का कोई विद्वान किसी विषय के गुण-दोष न प्रकट करे , तब तक आप उस विषय की ओर से उदासीन रहते हैं । आप उपनिषदों का आदर इसलिए नहीं करते कि वे स्वयं आदरणीय हैं , बल्कि इसलिए करते हैं कि ब्लावेट्स्की और मैक्समूलर ने उनका आदर किया है । आपमें अपनी बुद्धि से काम लेने की शक्ति का लोप हो गया है । अभी तक आप तांत्रिक विद्या की बात भी न पूछते थे । अब जो यूरोपीय विद्वानों ने उसका रहस्य खोलना शुरू किया , तो आपको अब तंत्रों में गुण दिखाई देते हैं । यह मानसिक गुलामी उस भौतिक गुलामी से कहीं गई-गुजरी है । आप उपनिषदों को अंग्रेजी में पढ़ते हैं , गीता को जर्मन में । अर्जुन को अर्जुना , कृष्ण को कृश्ना कहकर आप अपने स्वभाषा ज्ञान का परिचय देते हैं ।" 39

" काशी का अस्सी " काशीनाथ सिंह का एक बहुचर्चित उपन्यास है । xx सन् 2002 में ही उसके दो संस्करण राजकमल से प्रकाशित हो चुके हैं । पहले उपन्यास के कुछ अंश " कथा रिपोर्ताज " के नाम से प्रकाशित हुए थे , पत्र-पत्रिकाओं में और तभी पाठकों और लेखकों में बड़ी हलचल-सी मची हुई थी । " अब वह मुकम्मल उपन्यास आपके

सामने है जिसमें पाँच कथाएं हैं और उन सभी कथाओं का केन्द्र भी "अस्सी" §बनारस का एक लोकेल§ है । हर कथा में स्थान भी वही , पात्र भी वे ही — अपने असली और वास्तविक नामों के साथ , अपनी बोली-बानी और लहजों के साथ । हर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दे पर इन पात्रों की बेमुरव्वत और लट्ठमार टिप्पणियां काशी की उस देशज और लोक-परंपरा की याद दिलाती हैं जिसके वारिस कबीर और भारतेन्दु थे ।"[40] यहां इसी उपन्यास से भाषा के एक-दो स्तरों की बात कहने का यत्न हुआ है । यथा —

" हंसी धीरे-धीरे खत्म हो रही है दुनिया से । पश्चिम के लिए इसका अर्थ रह गया है — कसरत , खेल । क्लब , टीम , एसोसिएशन , ग्रुप बनाकर निरर्थक , निरुद्देश्य , जबर्दस्ती जोर-जोर से " हो-हो-हा-हा " करना । इसे हंसी नहीं कहते । हंसी का मतलब है जिन्दादिली जिन्दादिली और मस्ती का विस्फोट , जिन्दगी की खनक । यह तन की नहीं , मन की चीज है । यह किसी भी सनसनीखेज खबर से कम नहीं कि जम्बूद्वीप में एक ऐसी जगह है जहां हंसी बची रह गई है ।"[41] यह जगह है , काशी का "अस्सी" इलाका । उक्त परिच्छेक की जो भाषा है उसमें सूक्ष्म व्यंग्य की तरंग है । उपन्यास का प्रारंभ ही इन श्रीवाक्यों से होता है —

" मित्रो , यह संस्मरण वयस्कों के लिए है , बच्चों और बूढ़ों के लिए नहीं ; और उनके लिए भी नहीं जो यह नहीं जानते कि अस्सी और भाषा के बीच ननद-भौजाई और साली-बहनोई का रिश्ता है । जो भाषा में गन्दगी , गाली , अश्लीलता और जाने क्या-क्या देखते हैं और जिन्हें हमारे मुहल्ले के भाषाविद "परम" § चूतिया का पर्याय § कहते हैं , वे भी कृपया इसे पढ़कर अपना दिल न दुखाएं — ... तो , सबसे पहले इस मुहल्ले का मुख्तसर-सा बायोडेटा — कमर में गमछा , कंधे पर लंगोट और बदन पर जनेऊ — यह "यूनिफार्म" है अस्सी का । ... "हर हर महादेव " के साथ "भोंसड़ी के " का नारा इसका सार्वजनिक अभिवादन है । चाहे होली का कवि-सम्मेलन हो ,

चाहे कर्फ्यू खुलने के बाद पी.ए.सी. और एस.एस. पी. की गाड़ी , चाहे कोई मन्त्री हो , चाहे गधे को दौड़ाता नंग-धड़ंग बच्चा — यहां तक कि जार्ज बुश या मार्गरेट थैचर या गोर्बाचोव चाहे जो आ जाए (काशी नरेश को छोड़कर) — सबके लिए "हर हर महादेव " के साथ "भोंसड़ी के " का जय-जयकार ।"[42]

" ~~भाषा~~ भाषा का एक और उदाहरण इसी उपन्यास से —

" मित्रो , अस्सी का अपना "शब्द-कल्पद्रुम है " है — दुनिया जानती है । इसके पास और कुछ नहीं , शब्दों की ही खेती है । .... "गंड़ऊ गदर " एक ऐसी ही गांछ है इस बगीचे की जो पिछले दस-पन्द्रह सालों से फल-फूल रही है । ... यह पारिभाषिक शब्द है , सिम्पोजियम का , सेमिनार का , परिसंवाद का , संगोष्ठी के लिए , जिसमें बड़े-बड़े विद्वान और विचारक जुटते हैं , गरमागरम बहस करते हैं , प्रस्तावित विषय पर — सहमत-असहमत होते हैं , " ऐसा होना चाहिए , ऐसा ~~होना~~ होना चाहिए " , मेज पीट-पीट कर या माइक पर चिल्ला-चिल्ला कर बोलते हैं और खा-पीकर अपने-अपने घर प्रस्थान कर जाते हैं । यह होता है "गंड़ऊ गदर " यानी गंड़ुओं की क्रान्ति । नतीजा टांय-टांय फिस्स ।"[43]

अभिप्राय यह कि एक ही उपन्यास में भी भाषा या बोली के कई-कई स्तर मिल सकते हैं । "काशी का अस्सी" या " राग दरबारी " या "कुरु कुरु स्वाहा " जैसे उपन्यासों में भाषा-बोली के हमें अनेक स्तर प्राप्त ~~होते होते~~ होते हैं ।

एक ही उपन्यासकार में भाषा के विभिन्न स्तर :

एक ही उपन्यासकार में उपन्यास की विषय-वस्तु तथा परिवेश के आधार पर भाषा या बोली के विभिन्न स्तर मिल सकते हैं । हमारे आलोच्य उपन्यासकार शैलेश मटियानीजी को लें तो जहां एक तरफ उन्होंने "हौलदार" , "चिट्ठीरसैन " , " एक मूठ सरसों " , "चौथी मुट्ठी "

जैसे कुमाऊं की धरती के उपन्यास लिखे हैं ; वहां दूसरी तरफ " कथा नर्मदाबेन गंगूबाई " , " बारीवली से बोरीबन्दर तक " तथा "कबूतरखाना " जैसे उपन्यास लिखे हैं जिनमें प्रायः बम्बई के निम्नवर्गीय और उच्चवर्गीय समाज के लोगों का चित्रण किया है ; तो तीसरी तरफ " छोटे छोटे पक्षी " , आकाश कितना अनंत है " , कोहरे " , बर्फ गिर चुकने के बाद " जैसे उपन्यास हैं जो प्रायः नगरीय या कस्बाई जीवन पर आधारित हैं । अतः यहां उपन्यास की कथावस्तु , पात्र और परिवेश के हिसाब से भाषा के नाना स्तर ~~पर~~ प्राप्त होते हैं । दो-तीन उदाहरणों द्वारा इसे स्पष्ट करेंगे ।

मटियानीजी का उपन्यास " मुख सरोवर के हंस " लोकगायक शैली में लिखा गया है । अतः उसकी भाषिक-संरचना देखते ही बनती है । यथा — " एक समय काल ने क्या करवट , पवन ने क्या दिशा बदली कि पंचाचुली पर्वतश्रेणी की गुरु स्थली में पंचनाम देवों की , भाइयों की भेंट , केदार की यात्रा हुई । पंचनाम देव कौन ? ग्रैल गोल्ल गंगनाथ , भोला महाबली , हरू और सैमराजा । काली कुमाऊं , पाली पछाऊं के पांच लोकदेवता , कि पड़ती संध्या जगती भोर में , जिनके नाम की पहली धूपबाती होती है , कि पहली फूलपाती चढ़ती है , कि हम तुम्हारा नाम लेते हैं । एहो पंचनाम देवों । कथा कहने का दिवस और , निशा और , कि पहले तुम्हारी सेवा में युगलहाथ नतमाथ करते हैं , कि ऊंची अटारी , नीची पटारी पर जलता दिया जलता रहे , कि रेशम की डोर , मखमली पालने में कुसुमकण्ठी बालक झुलता~~रहे~~ रहे , कि गहरे सरोवर की नीली लहरों में खिला कमल खिलता रहे , कि हम तुम्हारा नाम लेते हैं । और शितल फुहार पड़ती , नशीली बयार चलती और~~झरझी~~ठण्डी पनार पड़ती रहे , कि इस कुमाऊं की धरती फूलों से महकती रहे , कि इस कथा की पावन बेला में हम तुम्हारा नाम लेते हैं । सिर से ढोक देते , पांव से लोट लेते हैं कि पड़ती सन्ध्या , जगती भोर में जिस गृहिणी ने तुम्हारे नाम का दीपक जलाया और तुम्हारे नाम की फूलपाती चढ़ाई , उसके गोठ की गैया , गोदी के बालक की उम्र

बड़ी करना । जिस घर के स्वामी ने तुम्हारे नाम की पंचमुखी आरती जलाई, सूर्यमुखी शंख बजाया, कांस्य घण्टी हिलाई, दीपबाती जलाई, उसे पट्टी का पटवारी, गांव का मुखिया, जिले का कलेक्टर बनाना, कि उसका रुतबा उठाना, कुनबा बढ़ाना कि हम तुम्हारा नाम लेते हैं।" 44

तो भाषा का एक दूसरा स्तर हमें उनके " किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई में मिलता है। इसमें बम्बइया भाषा का सहज प्रयोग मिलता है। उपन्यास में कल्लन उस्ताद का एक पात्र है जो "सूरज का सातवां घोड़ा" की शैली में कहानी का प्रारंभ यों करता है :

" न सात समंदर पार का, न राजा इन्दर के दरबार का न शहजादे शहरयार का या साढ़े तीन यार का — यह किस्सा है गांठिया-पापड़ी, उसल पाऊं, मसालाडोसा, बटाटा-वड़ा, चालु-स्पेशियल चाय और भेलपुरी के देश बम्बई का ... इस बम्बई में, जहां न फुटपातियों को चैन है न महलों को ही आराम .... तिरिया के सिर्फ दो भेद होते हैं। .... सुन कलंदर, देसाई-भुवन सातवां माला, कालबादेवी बम्बई-2 के शानदार फ्लेट में रहनेवाली सेठानी नर्मदाबेन और गांव पीचखोली, पोस्ट तालुका रहँसी, जिल्हा सतारा, हाल मुकाम मकनजी बम्मनजी की चाल, खोली नंबर पंधरा, भुलेश्वर मुम्बई - 2 की गंगूबाई का यह किस्सा है।" 45

इस उपन्यास की नर्मदाबेन सेठानी कवि कृष्णकुमार को चाहती है, लेकिन कृष्णकुमार तो गंगूबाई को प्रेम करता है। यहां नर्मदाबेन के कथनों से ही उनकी भाषा के दो स्तर मिलते हैं। वह शिक्षित और काव्य-संस्कारों से युक्त है। वह अपने प्रेमी कृष्णकुमार को प्रेम-निवेदन करते हुए कहती है —" करसन, इससे तुम्हें अधिक ग्लानि हो सकती है, पर मेरा शेष जीवन सुखी हो जायेगा ... मेरे असीम सुख के लिए, तुम अपनी क्षणिक दुविधा की बलि देकर

तो देखो ... तुम पहले पुरुष हो जिसे मैं अपनी सम्पूर्ण आस्था से समर्पण करने जा रही हूं ... मैं तुम्हें नारी-पुरुष के मिलन का चरम सुख दूंगी ।" [46]

परन्तु कृष्णकुमार तो गंगूबाई केलेवाली को अपना दिल दे बैठे थे । जब सेठानी को यह बात ज्ञात होती है तब वह गंगूबाई को समझाने की चेष्टा करती है — " गंगूबाई , तने केटलां नाणां जोइए ? मारा पासे थी लई जा ... हजार ... बे हजार ... त्रण हजार ... पण तु करसनबाबू छेने ? एने साफ ना पाडी दे . के तु एने महोबत करती नथी । हुं तारे पगे पडुं छुं गंगूबाई । हुं तने रहेवा माटे बांदरा मां फ्लेट आपीश , पण तु मारा करसन बाबू ने मने आपी दे ..." [47]

परन्तु सेठानी के रूपयों का रौब गंगूबाई पर नहीं चलता । वह सेठानी को सीधे-सीधे सुना देती है — " सेठानीबाई , ही तुमची दौलत मका नको ... या तुमचा बान्द्रा चा फ्लेट मका नको ... पण तो तुमचा करसनबाबू ... तो माझा मनाचा मीत गोविन्दा ... मला फक्त तोइच पाहिजे ।" [48]

यहां पर मटियानीजी की भाषा के विभिन्न स्तर हमें उपलब्ध होते हैं । कई बार ऐसा भी होता है कि एक ही व्यक्ति जब अलग-अलग लोगों से बात करती है तो उसकी भाषा में एक गुणात्मक अंतर पाया जाता है , जिसे हम उपर्युक्त उदाहरणों में सेठानी बाई के संदर्भ में देख सकते हैं ।

शैलेश मटियानीजी का एक उपन्यास " बर्फ गिर चुकने के बाद " शैली की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है । उसमें बहुत हद तक हमें चेतना-प्रवाह शैली (Stream of Consciousness) और एबसर्ड शैली का सम्मिश्रण-सा मिलता है । यथा — " अब अगर मैं आपको एकाएक यह बताने की कोशिश करूं कि शारदा के बाएं स्तन पर सलेटी रंग के तिल थे , और उन पर निहायत भूरे रोयें उगे हुए थे तो आप इस बात पर ठठाकर हंस पड़ना चाहेंगे और इत्मीनान से कह सकेंगे कि हम तो

पहले से ही समझ गये थे कि यह निहायत "परवर्टेड" किस्म का आदमी है । ..... और अगर मैं इसी क्षण यह भी बताना चाहूं कि जब मां का शवदाह हो रहा था, मैं बिजली की-सी कौंध की तरह इस स्मृति में भर गया था कि कभी मैं एक अबोध शिशु की-सी निर्द्वन्द्वता में इन्हीं xxxx धार होते हुए स्तनों में रहा होऊंगा । और जब तक मैं अपनी इस स्मृति में रहा, एक दुर्दान्त मृत्यु-गंध में रहा । ... तो यह एक मृत्यु की देहशत से "आब्सेस्ड" व्यक्ति की विद्रूपता लग सकती है ।" 49

"हौलदार" उपन्यास में हौलदार डुंगरसिंह अपने "काकज्यू" जमनसिंह के आगे जो अपनी शेखी बघारता है, उस समय की भाषा देखिए — "जमदूत से आठ पठान मेरी छाती पर ... मैंने समझ लिया, हफसर ने हाथ में सात जात की मशीनरी वाली रैफल थमाकर कुकमारच क्या कह दिया, वैतरणी के घाट भेज दिया है । फिर मैंने सोचा अपना बिनसना आ गया तो औरों के मुंह क्या देखना ... काकज्यू मैंने नाम लिया, जै मैया काली का, बरमा की बेटी, इन्दर की साली का, हाथ में खप्परवाली, काली कलकत्ता वाली, कि मैया आज तेरा बचन न जाय खाली ... पीठ के पुट्ठू (पलटनिया झोला) से निकाला हण्ड गिरनट ... धरती पर फेंका, आकाश में हाहाकार । ... पठानों का न कोई तर्पण करने वाला, न पिण्ड देने वाला, न नाम लेवा न काठ-देवा । पर इस महायुद्ध में एक पठान की गोली मेरे पांव पर भी बैठ गई ...." 50

वस्तुतः यहां डुंगरसिंह फेंक रहा है । अपनी गलती से अपने ही हाथों उसे गोली लगी थी और इसी सबब उसे फौज से निकाल दिया था, पर वह लोगों के आगे अपने फौजी जीवन की बहादुरी के झूठे कारनामे सुनाता रहता था ।

बहरहाल जो भी हो, यहां हमारा अभिप्राय, एक ही लेखक के औपन्यासिक कृतित्व में भाषा या बोली के विभिन्न रूपों को बताने का था, जो उपर्युक्त उदाहरणों से सिद्ध हुआ है ।

निष्कर्ष :

अध्याय के समग्रावलोकन से हम निम्नलिखित निष्कर्ष तक सहजतया पहुंच सकते हैं :—

§1§ भारतीय भाषाओं के साहित्य में उन्नसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से उपन्यास मिलता है ।

§2§ पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी विरचित "भाग्यवती" हिन्दी का प्रथम उपन्यास है ।

§3§ उपन्यास एक आधुनिक साहित्यप्रकार है । यूरोप में भी उसका उद्‌भव चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी के बाद यूरोपीय पुनर्जागरण § रेनेसां § के बाद हुआ है । इटली के लेखक बोकाचियो के "डेकामेरोन" में सर्वप्रथम उपन्यास के कुछ लक्षण उपलब्ध होते हैं ।

§4§ स्पेनिश लेखक सर्वान्तीस का " डोन किहोटे " विश्व-साहित्य की एक महान और अद्‌भुत रचना है जिसे हम उपन्यास के करीब की रचना तो कह सकते हैं , पर पूर्णतया उपन्यास नहीं ।

§5§ उपन्यास का निर्भ्रान्त स्वरूप हमें अठारहवीं शताब्दी के अंग्रेजी के लेखक डिफो के "राबिन्सन क्रूसो " में मिलता है ।

§6§ भारतीय साहित्य में भी उपन्यास का उद्‌भव उन्नसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में नवजागरण के पश्चात्‌ होता है । आधुनिक काल में उपन्यास के उद्‌भव के प्रमुख कारकों में अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव , गद्य का विकास , शिक्षा का प्रचार-प्रसार , मध्यवर्ग का उदय तथा नवजागरण आंदोलन आदि हैं ।

§7§ हिन्दी गद्य के विकास में प्रारंभ में लल्लूलाल गुजराती , पं. सदल मिश्र , मुंशी सदासुखलाल , मुंशी इंशा अल्लाखां , राजा शिवप्रसाद "सितारेहिन्द " , राजा लक्ष्मणसिंह , भारतेन्दु तथा भारतेन्दु मण्डल के लेखक आदि लेखकों का महत्वपूर्ण योगदान है । उसके पश्चात्‌ पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इसका परिमार्जन किया ।

§8§ हिन्दी उपन्यास के विकास के प्रमुख तीन सोपान माने गए हैं — पूर्व-प्रेमचन्दकाल , प्रेमचन्दकाल , प्रेमचन्दोत्तर काल ।

हिन्दी उपन्यास को उसका वास्तविक गौरव मुंशी प्रेमचन्द के द्वारा ही प्राप्त हुआ ।

§9§ पूर्व-प्रेमचन्दकाल के उपन्यासकारों में पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी लाला श्रीनिवासदास , पं. बालकृष्ण भट्ट , किशोरीलाल गोस्वामी , राधाकृष्णदास , मेहता लज्जाराम शर्मा , बाबू गोपालराम गहमरी , बाबू देवकीनंदन खत्री ; प्रेमचन्दकाल के लेखकों में प्रेमचन्द , कौशिकजी , पांडेय बेचन शर्मा "उग्र" , प्रप्रतापनारायण श्रीवास्तव , राजा राधिका-रमणप्रसादसिंह , ऋषभचरण जैन , उपेन्द्रनाथ अश्क , सियारामशरण गुप्त , तेजोरानी दीक्षित , उषादेवी मित्रा , निराला , प्रसाद ; प्रेमचन्दोत्तर काल के लेखकों में यशपाल , अमृतलाल नागर , हिमांशु श्रीवास्तव , अज्ञेय, जैनेन्द्र , इलाचन्द्र जोशी , रांगेय राघव , नागार्जुन , रेणु , राजे-न्द्र यादव , कमलेश्वर , निर्मल वर्मा , राजकमल चौधरी , शैलेश मटियानी , आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी , वृन्दावनलाल वर्मा , आचार्य चतुरसेन शास्त्री , डा. रामदरश मिश्र , डा. शिवप्रसाद सिंह , डा. राही मासूम रज़ा , रमेश बक्षी , श्रीलाल शुक्ल , कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा , मन्नू भंडारी , सुरेन्द्र वर्मा आदि की परिगणना कर सकते हैं ।

§10§ पूर्व-प्रेमचन्दकाल में सामाजिक , ऐतिहासिक , जासूसी , तिलस्मी , अनूदित उपन्यास जैसी औपन्यासिक प्रवृत्तियां ; प्रेमचन्दकाल में सामाजिक तथा ऐतिहासिक ; प्रेमचन्दोत्तरकाल में सामाजिक , ऐति-हासिक , मनोवैज्ञानिक , समाजवादी , आंचलिक , राजनीतिक , पौरा-णिक , व्यंग्यात्मक , साठोत्तरी आदि औपन्यासिक प्रवृत्तियां मिलती हैं ।

§11§ उपन्यास गद्य की विधा है । उसमें भाषा का सविशेष महत्व है , जिसे राल्फ फाक्स तथा ईरा वाल्फर्ट जैसे आलोचकों ने रेखां-कित किया है ।

§12§ उपन्यास यथार्थधर्मी विधा है । उसके यथार्थ के आकलन में भाषा का महत्व अपरिहार्य है ।

§13§ कई बार एक ही उपन्यास में पात्र-परिवेश के अनुरूप भाषा के एकाधिक स्तर दृष्टिगोचर हो सकते हैं ।

§14§ विषय-वस्तु तथा परिवेश की भिन्नता और पात्रानुरूपता के कारण कई बार यह देखा गया है कि एक ही उपन्यासकार के अलग-अलग उपन्यासों में भाषा के नाना रूप दृष्टिगत होते हैं । हमारे आलोच्य उपन्यासकार को ही लें तो उनके कुमाऊं की पृष्ठभूमि वाले उपन्यासों में भाषा का एक रूप मिलता है, तो बम्बइया पृष्ठभूमि वाले उपन्यासों में भाषा का बम्बइया रूप दृष्टिगोचर-श्रुतिगोचर होता है, तो अल्मोड़ा - दिल्ली आदि नगरों पर आधारित पर शिक्षित पात्रों वाले उपन्यासों में मटियानीजी की भाषा का एक तीसरा ही रूप हमारे सामने आता है । "बर्फ गिर चुकने के बाद" में भाषा की "एबसर्ड" शैली मिलती है ।

§15§ जिसका लोगों से सीधा § अपरागत -- First hand § सम्पर्क होगा वही उपन्यासकार अपने औपन्यासिक कर्म में सफल हो सकता है ।

======= XXXXXXX ======

:: सन्दर्भानुक्रम ::

§1§ भाग्यवती : पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी : पृ. 7-8 ।

§2§ द्रष्टव्य : दीक्षा : नरेन्द्र कोहली ।

§3§ द नोवेल एण्ड द पिपल : राल्फ फाक्स : पृ. 83 ।

§4§ द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव : डा. भारतभूषण अग्रवाल : पृ. 22-31 ।

§5§ हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : पृ. 425 ।

§6§ हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव : पृ. 26 ।

§7§ द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास : डा. पारुकान्त देसाई : पृ. 51 ।

§8§ द नोवेल एण्ड द पिपल : पृ. 20 ।

§9§ संस्कृति के चार अध्याय : डा. रामधारीसिंह दिनकर : पृ. 466 ।

§10§ वही : पृ. 466 ।

§11§ द्रष्टव्य : हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त सुगम इतिहास : डा. पारुकान्त देसाई : पृ. 52-54 ।

§12§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 59-60 ।

§13§ द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव : पृ. 24 ।

§14§ हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त सुगम इतिहास : पृ. 60 ।

§15§ प्रेमचन्द और गोर्की : सं. शचिरानी गुर्टू ।

§16§ द्रष्टव्य : प्रेमचन्द और उनका युग : डा. रामविलास शर्मा : पृ. 31 ।

§17§ हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त सुगम इतिहास : पृ. 60-61 ।

§18§ द्रष्टव्य : प्रस्तुत प्रबंध : पृ. 8 ।

§19§ भाग्यवती : पृ. 9 ।

§20§ द नोवेल एण्ड द पिपल : पृ. 20 ।

§21§ लेखक की जमीन : डा. गोविन्द मिश्र : पृ. 18 ।
§22§ सेवासदन : प्रेमचन्द : पृ. 124-128 ।
§23§ चिट्ठीरसैन : शैलेश मटियानी : पृ. 16 ।
§24§ द राईटर्स एट वर्क : हार्पर एण्ड ब्रदर्स : पृ. 8 ।
§25§ मुर्दाघर : जगदम्बाप्रसाद दीक्षित : पृ. 179 ।
§26§ द्रष्टव्य : "हिन्दी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा" : डा. रामदरश मिश्र ।
§27§ हौलदार : शैलेश मटियानी : पृ. 252-253 ।
§28§ केशव महराज के मुंह से सुना हुआ ।
§29§ रेणु की श्रेष्ठ कहानियां : सं. राजेन्द्र यादव : भूमिका : पृ. 6 ।
§30§ द्रष्टव्य : क्षितिज : गुजराती पत्रिका : सं. सुरेश जोशी : नवलकथा विशेषांक ।
§31§ द्रष्टव्य : परख : जैनेन्द्र : भूमिका ।
§32§ द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास साहित्य की परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 51 ।
§33§ द नोवेल एण्ड द पिपल : राल्फ फाक्स : पृ. 20 ।
§34§ कुछ विचार : प्रेमचन्द : पृ. 46 ।
§35§ उपन्यास " शीर्षक लेख : आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : साहित्य-संदेश : मार्च-1940 ।
§36§ आधुनिक साहित्य : आचार्य नंददुलारे वाजपेयी : पृ. 173 ।
§37§ हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन : डा. गणेशन : पृ. 29 ।
§38§ चारुचन्द्रलेख : आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : पृ. 347-348 ।
§39§ सेवासदन : पृ. 177 ।
§40§ काशी का अस्सी : डा. काशीनाथ सिंह : प्रकाशकीय वक्तव्य से ।
§41§ वही : उपन्यास के दूसरे फ्लेप से ।
§42§ वही : पृ. 11 ।

§43§ काशी का अस्सी : डा. काशीनाथ सिंह : पृ. 75 ।

§44§ सुख सरोवर के हंस : शैलेश मटियानी : पृ. 3-4 ।

§45§ किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई : शैलेश मटियानी : xxxपृxx
आमुख से ।

§46§ वही : पृ. 94 ।

§47§ वही : पृ. 100 ।

§48§ वही : पृ. 100-101 ।

§49§ बर्फ गिर चुकने के बाद : शैलेश मटियानी : पृ. 26 ।

§50§ हौलदार : शैलेश मटियानी : पृ. 31 ।

xxxxxxxxxxxxxxxxxxx